विचारधारा

2

निरंकारी बाबा

सम्पादक का निवेदन

आज जिनकी हम भगवान कहकर पूजा करते हैं, उनका जीवन भी गुरु ने ही सत्य की ओर मोड़ा था। भगवान् राम महर्षि वशिष्ठ के शिष्य थे और भगवान कृष्ण को सन्दीपन ऋषि ने माखन चोर से ज्ञानियों का सिरमौर बनाया था। बाल्मीकि को दस्युराज से कवियों का सरताज किसने बनाया? विवेकानन्द को शिकागो सम्मेलन में सबको परास्त करने की शक्ति किसने दी? स्वामी रामतीर्थ का तत्वदर्शी ब्रह्मनिष्ठ किसने किया? स्वामी दयानन्द सरस्वती में समाज-सुधार की प्रबल भावना किसने भरी? इन सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि गुरु ने। तभी तो महाकवि तुलसीदास को कहना पड़ा कि चाहे ब्रह्मा और शंकर जैसे महाज्ञानी भी क्यों न हों, परन्तु बिना गुरु के संसार-सागर अथवा माया-जाल को पार नहीं कर सकते। सद्गुरु के प्रवचन सुनकर ही हम ब्रह्मज्ञान की ओर उन्मुख होते हैं।

गुरु मार्ग-प्रदर्शक ज्योति है, इसके बिना अज्ञानता के अन्धकार में पथ की खोज करना असम्भव सा है। अन्धेरे कूप में ईंट फेंककर शक्ति के व्यर्थ क्षय की अपेक्षा आदि मनुष्य वही शक्ति गुरु-ज्योति की खोज में व्यय करे तो जीवन का स्वरूप नवोदित दिनकर की हर्षोल्लास लालिमा जैसे आलौकिक आनन्द का भोग कर सकता है।

ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भक्त के भाव ही बदल जाते हैं। जिस व्यक्ति को वह साधारण एवं लौकिक समझता था, उसी के विषय में कह उठता है - 'हे असीम! सीमा में भी आपका ही स्वर ध्वनित हो रहा है। हमारे अन्तःकरण में आपका ही मोहक प्रकाश है। हे रूपविहीन! कितने ही रंगों, गंधों, गीतों और छंदों में आपकी लीला विस्तार पा रही है। हे लीलाधारी! मानव समाज को आपने सुख-सुविधा प्रदान करके सभी का हृदय जीत लिया है। अतः भवसागर से पार करने वाली भक्ति-नैया के आप ही केवट हैं। दुनिया के अनेक सहारे हैं, परन्तु हमारी तो केवल एक ही टेक है और वह हैं, आप! केवल आप! हम आपकी विश्व सभा में केवल आप की स्तुति गानें आये हैं। अपनी विश्व सभा में गुनगुनाने भर की अनुमति दे दो! प्रभु! आपके स्वर हमारे गीतों में अभिव्यक्त होते रहेंगे।

आपके निराकार स्वरूप को आपकी कृपा से जो जानते हैं, वे ही आपके इस दिव्य साकार स्वरूप को पहचान सकते हैं। भगवान को भक्तों के अलावा आज तक किसी ने पहचाना भी तो नहीं। जो माया–पाश में बंधे पड़े हैं और आपके निराकार स्वरूप को नहीं जानते, उन पर भी कृपा करो! कृपा करो! कृपा करो! आपके सुखद ब्रह्म–विचार के पावन जल में स्नान करके लाखों भक्त नित्य मुक्ति का आनन्द प्राप्त करते हैं।

49वाँ वार्षिक सन्त–समागम
दिल्ली।

आपका अकिंचन
डॉ. विजय शर्मा

प्रभु की प्राप्तिः क्यों और कैसे?

समय के बदलने से या युगों के बदल जाने से प्रभु की प्राप्ति के तरीके नहीं बदल गये हैं, साधन नहीं बदल गये हैं। जैसे दुनिया में पुराने समय से ही पानी प्यास बुझाने के लिये हैं। यह तो नहीं कि उस वक्त भोजन किया करते थे या कोई अच्छे वस्त्र पहन लिया करते थे, तो इससे उनकी प्यास बुझ जाती थी। प्यास पानी पीने से ही तो बुझती थी। जिस सूरज की रोशनी से खेतों में अन्न पका करते थे, उसी सूरज की तपश से कीटाणुओं का नाश हुआ करता था। सूरज जो काम उन युगों में कर रहा था, वही काम आज भी कर रहा है। पुरातन युगों में जैसे साधन बने थे, वह आज तक चलते आ रहे हैं। तो क्या भक्ति में कुछ फर्क आ गया होगा? उन दिनों नम्रता भक्ति का एक अंग था और आजकल तो अभिमान भक्ति का अंग हो गया है। क्या उसी से ही पार उतारा होगा? नहीं। जितने भी सन्त-महापुरुष पुरातन युगों में इस संसार में आये हैं, उन्होंने जो रास्ता तब अपनाया, वही रास्ता आज भी अपनाना होगा, आज भी उसी को अपने जीवन में, अपने मन में स्थान देना होगा। यह है प्यार, सत्कार, समदृष्टि और नम्रता वाला रास्ता। ये गुण जब तक हमारे जीवन में नहीं आयेंगे, हम कभी न तो प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं और न ही सुख की सांस ले सकते हैं।

सुन्दर कृति को देखकर कलाकार के विषय में सभी जानना चाहते हैं। परमात्मा की कृति इतनी विचित्र और अनोखी है कि देख-देखकर आश्चर्य होता है। एक बार कोई इन्सान नारियल के पेड़ के नीचे कुछ ढूंढ रहा था। किसी ने पूछा, 'भाई साहब, क्या बात है। कुछ पैसे गिर गये? आप क्या ढूंढ रहे हैं? क्या कोई वस्तु गिर गई?' कहता है, 'नहीं' फिर भी टटोल-टटोल कर देख रहा था। उसने फिर पूछा, 'भाई साहब आप क्या देख रहे हैं? बताते क्यों नहीं? वह इन्सान कहने लगा, 'मैं यह देख रहा हूँ कि वह पाइप कहाँ पर लगी हुई है, जो इन नारियलों में पानी भरती है। मैं उस पाइप को ढूंढ रहा हूँ।' कहने का भाव, प्रभु तो बिना पाइप के ही नारियलों में पानी भर देता है और कभी अभिमान भी नहीं करता। प्रभु के भक्त भी अभिमान नहीं करते।

साधसंगत! इस संसार में इन्सान कोई छोटी-सी वस्तु भी बना लेता है, तो गर्व से कहता है, 'देखो मैंने क्या कर लिया है, मैं तो बहुत बड़ा कलाकार बन गया हूँ। मेरे में तो कितना हुनर है।' अगर ईश्वर की एक-एक रचना को

इन्सान देख ले, अपने ही शरीर को, नाखून से लेकर सिर के बाल तक देख ले, एक–एक अंग के कार्य देख ले तो इन्सान दंग हो जायेगा। यह जो शरीर का सिस्टम (यंत्र) बनाया गया है, यह क्या ऐसे ही बन गया है? इसके पीछे कलाकार है, इन्सान अज्ञानता में उसे ही भूल गया है, अपने आप को करने–कराने वाला मानता है और फिर मायावादी बनकर वह इन्हीं में उलझा हुआ, अपने इस जीवन को बेकार कर लेता है।

मायापति को जाने बिना, यह माया भी सुख देने वाली नहीं होती। प्रभु से मिले बिना इन्सान की आत्मा व्याकुल होकर भटकती रहती है। महात्मा कहते हैं –

कबीर चकई जउ निसि बीछुरै आई मिले परभाति,
ज्यों नर बिछुरै राम सिउ ना दिन मिले न राति।

अन्धेरी रात में चकवे को चकवी की आवाज सुनाई देती है। सुनकर वह उस तरफ चला जाता है। फिर दूसरी तरफ से आवाज आती है तो उधर भाग खड़ा होता है। सारी रात वह भटकता है। जीवन में जब प्रभात होती है, आलोक फूटता है, उसकी भटकन समाप्त होती है। मनुष्य भी जब परमपिता परमात्मा से एक बार बिछुड़ जाता है तो उसका भटकना प्रारम्भ हो जाता है। उसकी भटकन तभी समाप्त होती है जब उसका नाता पुनः निराकार से जुड़ जाता है। अतः इस मूल प्रभु परमात्मा, इस हरि के साथ हमें अपना नाता जोड़े रखना है। अगर इसके साथ हम नाता जोड़े रखेंगे, तो हमारी आत्मा शान्त हो जायेगी, हमारे आवागमन के बन्धन समाप्त हो जायेंगे और हमारे मन में हर एक इन्सान के प्रति प्रेम की भावना जागृत होगी। हम हर एक इन्सान को अपना मानेंगे। किसी को पराया, किसी को बेगाना नहीं मानेंगे। हम कभी फिर अभिमान नहीं करेंगे।

मनुष्य की अज्ञानता यह है कि वह अपने को शरीर ही माने बैठा है और मैं यह शरीर ही हूँ यह समझता है। यह शरीर तो हमेशा रहने वाला नहीं है। यह तो पाँच तत्वों का पुतला है। जब इन पाँच तत्वों से इस शरीर का नाता टूट जाता है तो शरीर का अन्त हो जाता है। मनुष्य शरीर तक ही सीमित है। वह तन को ही सब कुछ माने बैठा है। यही उसकी अज्ञानता है। उसके लिये यह समझना आवश्यक है कि वह कौन है? किसके कारण इस शरीर में

हरकत है? किसके कारण यह शरीर चल-फिर रहा है? मनुष्य कहता है कि यह मेरा हाथ है, मेरा सिर है, मेरे पाँव हैं, मेरी आँखें हैं, मेरे कान हैं। अगर मनुष्य शरीर है तो शरीर कहे कि मैं आँख हूँ, मैं कान हूँ, मैं सिर हूँ आदि। लेकिन नहीं। जिस तरह हम मकान में रहते हैं तो हम यह नहीं कहते कि मैं मकान हूँ, मैं अलमारी हूँ। हम मकान के बीच में रहते हैं। हम चेतन हैं। इसलिये मनुष्य को कहना चाहिये कि मैं शरीर में रहता हूँ। मनुष्य को इसी अज्ञानता को दूर करना होगा।

मनुष्य तब तक है, जब तक शरीर है। जब तक शरीर है, तब तक ही तो उसके अन्दर आत्मा का वास है। इस आत्मा को परम आत्मा से अपना नाता जोड़ कर इस दूरी को समाप्त करना होगा। तभी सुख है, चैन है। तभी पार उतारा है। तभी आवागमन के बन्धनों से छुटकारा है। जब तक आत्मा का परम सत्ता से मिलन नहीं हो जाता, मनुष्य इस तरह भटकता रहेगा। अतः मनुष्य के लिये यह ज़रूरी है कि वह परम सत्ता से अपना नाता जोड़ ले।

सद्गुरु की महिमा

गुरु का वचन क्या है? इस निराकार-दातार का इशारा, इस प्रभु-दातार का ज्ञान। जो गुरु के इस वचन पर एतबार करके, इस पर चलता है, गुरु से यह ज्ञान रूपी रोशनी प्राप्त करता है और जीवन में अपनाता है, वही इससे लाभ प्राप्त करता है।

कहीं पर बहुत अंधकार हो और एक इन्सान आवाजें दे कि कोई रोशनी करो, अन्धेरे में बहुत ठोकरें लग रही है। उसकी आवाज़ें सुनकर कोई उसकी हथेली पर दिया जलाकर रख देता है। अब चारों तरफ रोशनी हो जाती है, लेकिन रोशनी-रोशनी चिल्लाने वाला इन्सान अगर अपनी आंखें बन्द कर लें, तो चारों तरफ रोशनी होने के बावजूद भी रास्ते में पत्थर आने पर उनसे ठोकरें ही खाता है। कहने का भाव, हमें साधु की कृपा से जो ज्ञान रूपी रोशनी प्राप्त होती है, उससे लाभ लें। उस शिक्षा को हम अपने जीवन में उतारें, अमल में लायें, तब ही उससे हम सुख प्राप्त कर सकते हैं।

जब साधु से हमें यह ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है और हम अपने आप को इस संत के आगे अर्पण कर देते हैं, तब ही यह अमोलक वस्तु हमारे मन में टिक सकती है, लेकिन अगर यह मन हील–हुज्जत ही करता रहे, तो फिर यह ज्ञान इसमें नहीं ठहरता, क्योंकि हुज्जती मन हमेशा अभिमानी होता है और

हर जी को हंकार न भावें।

इस हरि को अहंकार अच्छा नहीं लगता। अवतार बाणी में बाबा अवतार सिंह जी भी फरमाते हैं कि –

जिस गुरसिख नूं निवणा भुल्ले, उत्थे गुरु खलोंणा नहीं।

अगर यह मन निमाणा नहीं बनता, नम्र भाव में नहीं आता तो वहाँ पर न गुरु है और न गुरु का ज्ञान है। अगर गुरु के आदेशों–उपदेशों को हम अपने जीवन में नहीं उतारते, तो हमें वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। दास, दातार के चरणों में यही अरदास करता है कि दातार ऐसी मेहर करे, ऐसी कृपा करे कि आप सन्तजन महापुरुष ज्ञान के साथ कर्म जोड़कर इस संसार का भला मांगते रहें, भला करते रहें। ऐसी कामना ज्ञानवान महापुरुष ही कर सकते हैं।

इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये जहाँ गुरु की कृपा आवश्यक है, वहाँ जिज्ञासु की तीव्र जिज्ञासा (ज्ञान की प्यास) भी ज़रूरी है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुसार जिज्ञासा इतनी तीव्र होनी चाहिये, (जैसे) यदि कोई इन्सान डूब रहा हो, पानी में उनके श्वास जा रहे हों, जिस तरह से उसको उस वक्त पानी से बाहर निकलने की इच्छा होती है, जिस तरह से उसकी एकाग्रता होती है कि मैं इस पानी से बाहर आ जाऊँ और खुली सांस ले सकूँ, मेरा मुख पानी से बाहर आ जाये। उसकी तड़प जो उस वक्त होती है, उसी तरह इन्सान की तड़प इस प्रभु दातार के लिये होनी चाहिये। इस भवसागर से पार उतरने की इच्छा होनी चाहिये।

आत्मा को परमात्मा की जो प्यास है, उस तरफ इन्सान कोई ध्यान नहीं देता, लेकिन अगर शरीर को पानी की प्यास लगती है तो एक गली में पहुँचता

है और कहता है कि बड़े ज़ोरों से प्यास लगी है, भाई साहब, बताइये पानी कहाँ से मिलेगा? कोई बताता है कि यह गली, जहाँ आप हैं आगे दाहिने मुड़ती है, वहीं नल लगा हुआ है। वहाँ आपको पानी मिल जायेगा। इन्सान जाता है, नल खोलता है। एक बूंद भी नहीं निकलती। तक क्या वहीं पर ठहर जाता है? नहीं। फिर किसी से पूछता है, फिर कोई बताता है, कि एक फर्लांग आगे चले जाओ, वहाँ पर भी नल लगा हुआ है पानी मिल जायेगा। वहाँ जाता है, पानी नहीं मिलता। तब भी क्या वह वहीं बैठ जाता है, कि दो–तीन फर्लांग चल कर भी आ गया, मुझे तो यहाँ पानी नहीं मिला, मैं तो बस अब यहीं बैठता हूँ। प्यास उसके मन को तड़पायेगी और तब तक तड़पायेगी जब तक उसे पानी नहीं मिलेगा। चाहे उसको कोई भागने के लिये कहे, चाहे आंधी चल रही हो, पर उसे तो चलना है, क्योंकि पानी की तड़प है। इसी तरह से अगर इस हरि की तड़प मन में है, तो इंसान को जहाँ जाने को कहा जाता है, यदि वहाँ पर सन्तुष्टि नहीं होती तो आगे चलता है। अगर उस को हकीकत में आत्म साक्षात्कार नहीं कराया जाता, कि ये अचल है, अमर है, अविनाशी है, कण–कण में व्याप्त है, हर जगह मौजूद है, प्रलय के साथ प्रलय नहीं होता, उत्पन्न के साथ उत्पन्न नहीं होता, जितने भी प्रभु के गुण बताये गये हैं, उस परमात्मा का अगर बोध नहीं होता, तो अवश्य इन्सान को ये प्रयत्न करते रहना है। लेकिन अगर इसकी प्यास वास्तव में इन्सानों को है, तो इस कार्य को कभी कल के लिये नहीं छोड़ेंगे। अगर अभी मुझे प्यास लगी है, अभी मुझे भूख लगी है तो क्या मैं कह दूँगा कि अभी मुझे समय नहीं है, मैं कल खा लूंगा, मैं परसों पानी पी लूँगा? नहीं जिसे वास्तव में भूख लगती है, प्यास लगती है तो थोड़ा समय व्यतीत होते ही उसका गला सूखना शुरू हो जाता है। उसके पेट में दर्द होना शुरू हो जाता है। उसका जी मिचलाना शुरू हो जाता है। इसी तरह इन्सान को वास्तव में अगर परमात्मा की भूख और प्यास है, तो वह हमेशा परमात्मा की तरफ कदम बढ़ायेगा, वह इसे कभी भुला नहीं देगा, कभी बिसार नहीं देगा।

जल बिना की, मछली की जो हालत रहती है, भक्तों के मन की प्रभु के बिना वही हालत हुआ करती है। इसलिये जो वास्तव में भक्त होता है, उसी के बारे में कहा जाता है –

ज्यों जल प्यारा माछरी, लोभी प्यारा राम।
ज्यों मात प्यारा बालक, त्यों भक्त प्यारा राम।।

अर्थात् मछली को जैसे जल प्यारा है, लोभी को दाम प्यारा है। जो लालची होते हैं, उनके लिये ही कहा जाता है कि चमड़ी पर दमड़ी न जाये। इसी प्रकार भक्त को राम प्यारा होता है। साध संगत्! प्यार निष्काम भाव से किया जाता है। जिस तरह से माँ भी अपने बच्चे से प्रेम करती है, तो उसमें कोई स्वार्थ की भावना नहीं हुआ करती है। वह यह नहीं सोचती कि बच्चे ने जन्म लिया है, ये बच्चा बड़ा होगा, कमाकर लायेगा, फिर वो मुझे खिलायेगा, इसलिये मैं इसकी परवरिश करूँ, वो इसलिये परवरिश नहीं करती है। वो जानती है कि उसकी रगों का रक्त, उसकी लिव (प्रीति) उसके साथ जुड़ी है। एक-एक धड़कन उसकी अपनी है। ज़रा सी आंच भी उसको आती है, तो उसको पीड़ा शुरू हो जाती है। वो एक निष्काम भाव से की हुई देखभाल है। वो निष्काम भाव से किया हुआ प्रेम है। इसी तरह से इस प्रभु के साथ भी ये भक्त निष्काम भाव से प्रेम करता है और कोई कामना रखे बगैर करता है। कहा भी है -

कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होये।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वर्णकूल खोये।

यानि भक्त लालसा के बगैर प्रेम किया करते हैं। वो प्रेम इसलिये करते हैं कि यह आनन्द का स्त्रोत होता है, सुख का स्त्रोत होता है। इस दिव्य चक्षु या ज्ञान दृष्टि को प्राप्त करने के लिये गृहस्थ छोड़ने की ज़रूरत नहीं।

इसी तरह से इस प्रभु को जब हम याद करते हैं, इसकी प्राप्ति की इच्छा यदि हमारे मन में है, तो फिर इस इच्छा की पूर्ति भी करनी आवश्यक है, इस मालिक के साथ अपना नाता जोड़ लेना है, जिसका ज़िक्र हुआ है कि ये हर जगह मौजूद है। ये पत्ते-पत्ते में है, ये डाली-डाली में है। कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ पर मालिक मौजूद नहीं। इसे देखने के लिये केवल दिव्य चक्षु की ज़रूरत है और दिव्य चक्षु या ज्ञान दृष्टि को प्राप्त करने के लिये न तो गृहस्थ छोड़ने की ज़रूरत है, न जंगलों, पर्वतों, वीरानों आदि में जाकर डेरा लगाने की ज़रूरत है और न ही अपने कर्त्तव्यों का त्याग करने की आवश्यकता है। जिस तरह अर्जुन, भगवान श्री कृष्ण जी के साथ कई वर्ष रहे, लेकिन वे अनेक वर्ष अज्ञानता में ही व्यतीत हुये। अर्जुन ने जब जिज्ञासा प्रगट की, तब भगवान श्री कृष्ण ने दिव्य चक्षु प्रदान कर उसकी अज्ञानता को दूर कर दिया।

अगर कोई कहे कि हम इस गृहस्थी, इस मायाजाल को छोड़ दें, कहीं पर वीरानों में डेरे लगा लें, तब इस प्रभु की प्राप्ति की जा सकती है, लेकिन श्री कृष्ण का उपदेश तो रण के मैदान में, कुरूक्षेत्र में दिया गया था। अगर हम ऐसा भी मान लें कि कुरुक्षेत्र कोई मैदान नहीं था, ये तो कर्म के क्षेत्र का ज़िक्र हो रहा है। इससे भी यही सिद्ध है कि कृष्ण भी अर्जुन को तब ज्ञान दे रहे हैं, जब वह कर्म क्षेत्र में हैं। कर्म से दूर रह कर, उन फर्ज़ों से दूर भागने पर वह अपने इस विराट स्वरूप का ज्ञान नहीं करा रहे हैं।

आज यहाँ पर भी यही बात कही जा रही है कि आप इस निरंकार को जान सकते हैं, इस आत्मा को इस निराकार के साथ जोड़ सकते हैं, अपने निज घर को प्राप्त करके आपका भवसागर का बन्धन टूट सकता है तथा आवागमन से छुटकारा मिल सकता है। साध संगत, जैसे दुनिया में कोई इन्सान किसी काम को करने का दावा करता है तो हम कहते हैं, 'भाई साहब ये करके दिखाओ।' कोई इन्सान कहता है कि मैं छह फुट ऊँची छलांग लगा सकता हूँ। हम कहते हैं कि हम नहीं मानते, लगा कर दिखाओ। जब वो छलांग लगाकर दिखा देता है, फिर हमारी तसल्ली होती है। अगर हम उसके लिये रुकें ही नहीं और कहें कि हम नहीं मानते कि यह छलांग लगा सकता है और हम अपने घर की तरफ चलना शुरू कर दें, तो फिर कैसे पता चलेगा कि वाकई ये कर सकता है या नहीं? इसी तरह से जब निरंकारी मिशन से यह आवाज मिलती है कि प्रभु परमात्मा की पहचान हो सकती है, इसकी प्राप्ति हो सकती है। अगर हम यही कहते रहें कि हो ही नहीं सकती और इतना कह कर ही हम अपने घरों को लौट आयें, तो ये हमारी भूल होगी। जब कहा जाता है कि यह हो सकती है, तो हमें विनती करनी चाहिये, हमें सम्पर्क करना चाहिये और कहना चाहिये कि अगर आप कहते हैं कि प्रभु के साथ नाता जुड़ सकता है तो हमें ब्रह्मज्ञान प्रदान करके हमारा नाता प्रभु से जोड़ने की कृपा करो।

ब्रह्मज्ञान का महत्व

दुनिया में जितने भी नाम हैं, वो सभी नाम किन्हीं चीज़ों के हैं। केवल नामों का ज़िक्र करने से हमारा काम नहीं चलता। अगर नामों का ज़िक्र करने से काम चलता होता, तो फिर कौन झोंपड़ी में रहेगा? एक गरीब भी एक

महल का ज़िक्र करता रहे, एक संगमरमर के मकान का ज़िक्र करता रहे, तो क्या उसको वही सुख साधन प्राप्त हो जायेंगे? नहीं, केवल नामों से काम नहीं चलता, दुनिया में हमारे तमाम काम जो हो रहे हैं, वह वस्तुओं से हो रहे हैं, नामों से नहीं। भाव यह है कि परमात्मा के, राम के भी केवल नाम के ज़िक्र से काम चलने वाला नहीं, इस नाम की वस्तु को जानना आवश्यक है –

एक वस्तु बूझहि ता होवेहि पाक।
बिनं बुझे तू सदा नापाक।।

अतः इन्सान को यह जानना पड़ेगा, समझना पड़ेगा कि जिसे राम कहते हैं, अल्लाह कहते हैं, गॉड कहते हैं, वाहे गुरु कहते हैं, वह वस्तु क्या है? इस वस्तु को जान कर जब इससे इन्सान का नाता जुड़ता है, सिर्फ वह अपनी जीवन सफल कर पाता है। तभी उसके मन में विशालता आती है, उसका 84 लाख योनियों में आवागमन का चक्कर खत्म होता है। यह वस्तु प्राप्त करने का अवसर केवल मानव को है। वस्तु प्राप्त करने के लिये भी साधन का होना ज़रूरी है।

अध्यापक जब सिखाता है, तो छोटी–छोटी डिजिट (संख्या) सबसे पहले सिखाता है, फिर सैंकड़ों, हज़ारों तक जोड़, घटा, गुणा, भाग सब कुछ सिखा देता है। बड़ी–बड़ी संख्यायें लिखी जाती हैं। लेकिन कॉपी किताबों में लिखी बड़ी–बड़ी संख्याओं से किसी का काम नहीं चलता। हम सभी जानते हैं कि लिखी हुई बड़ी रकमें भी किसी के काम नहीं आतीं, जबकि छोटी–सी रकम 10 रूपये भी पास हों तो बड़े काम आ जाती है। इसी तरह प्रभु का नाम है। अनेक नाम हैं, परन्तु नाम से कोई काम नहीं होता। परमात्मा के अनेक गुण हैं। अनेक गुण होने के कारण इसके नाम भी अनेक हैं। लेकिन नामी से जुड़ने की बजाये नामों में उलझते रहने के कारण इन्सान आपस में झगड़ पड़ते हैं। वे दूसरे इन्सानों को बेगाना, पराया मान लेते हैं।

हरि के साथ जुड़ने का कार्य सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसके बारे में कहा गया है कि इन्सान! सबसे पहले तूने यही ज़रूरी काम करना है। जो तू दूसरे कर्मों को ज़रूरी समझ रहा है, वे इससे ज्यादा ज़रूरी है।

इन्सान भली–भांति देखता है कि किसी के संसार से उठ जाने पर उसका कोई भी सांसारिक फर्ज़ अन–निभा नहीं रह जाता। कोई न कोई रिश्तेदार उस फर्ज़ को निभा देता है। लेकिन आत्मा का जो परमात्मा से मिलन का काम है, वह तो खुद ही करना होगा। यह किसी और के करने से होने वाला नहीं। यह काम सबसे ज़रूरी है इसलिये इसे सबसे पहले करना है।

आज इन्सान माया के पदार्थों में उलझा हुआ है। अभिमान करता है कि मैं बहुत विद्वान हूँ, मैंने बहुत पढ़ाई–लिखाई की है। मैंने बहुत फिलॉसफी (दर्शन) पढ़ी है। सोचता हूँ कि शायद इसी से मेरा पार–उतारा हो जायेगा। परन्तु यह सिर्फ उसका भ्रम है। एक महापुरुष किसी गाँव में प्रचार–यात्रा पर गये। उपस्थित लोगों से पूछा, 'परमात्मा को जानते हो? किसी को परमात्मा का ज्ञान हासिल करना है?' सामने अभिमानी अभिमान में भरे बैठे थे। वे कैसे कहें कि नहीं जानते? इसलिये बोले कि हाँ जानते हैं। सन्त जी बोले, जब जानते हो तो ठीक है, फिर मेरे कहने की ज़रूरत नहीं।' यह कहकर चले गये। बाद में कुछ जिज्ञासु सज्जन उन लोगों से कहने लगे कि यह आपने क्या किया? आपके कारण एक महात्मा से हम अपना अमूल्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। उन्होंने कहा कि इस बार वे जब आयें तो सभी ने कहना है कि 'नहीं'। किसी ने भी 'हाँ' नही कहनी। कुछ समय बाद महात्मा फिर उसी गांव में पहुँचे। इस बार महात्मा ने सवाल थोड़ा–सा बदल किदया, वे बोले, 'परमात्मा है कि नहीं'? सभी ने पहले ही निश्चित किया गया उत्तर दिया, 'नहीं'। महात्मा कहने लगे कि आप तो परमात्मा को मान ही नहीं रहे, तो फिर मैं क्या बताऊँगा? यह कहकर चले गये। बाद में सभी कहने लगे कि सवाल की तरफ हमने ध्यान ही नहीं दिया यह हमसे कितनी बड़ी भूल हुई। उन्होंने आपस में सलाह की कि इस बार जब सन्त जी आयेंगे, तो आधे कह देना, 'हाँ' और आधे कह देना 'नहीं'। बाद में जब महात्मा उस गाँव में आये, तो उन्होंने पहले वाला सवाल पूछा कि परमात्मा को जानते हो? आधे लोगों ने कहा – 'हाँ'। आधे लोगों ने कहा – 'नहीं'। उस महात्मा ने फिर कह दिया – 'अच्छा ऐसी बात है। आधे तो जानते हैं, आधे नहीं जानते। जो आधे लोग परमात्मा को जानते हैं, वे न जानने वालों को बता दें। मैं तो चला।' उन लोगों ने इस बार मौका गंवाना ठीक नहीं समझा। उन्होंने सन्त के चरण पकड़ लिये। तक सन्त ने उन्हें समझाते हुये कहा कि आप पहले ही धारणायें बनाकर बैठे हुये हैं। फिर ज्ञान कैसे प्राप्त होगा?

महात्मा के आगे तो सर्वस्व अर्पण करना होता है। मन के बर्तन को खाली करके अर्पित करना होता है, तभी इस अमूल्य वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है। सांसारिक ज्ञान इसमें काम नहीं आता। एक अच्छा पढ़ा लिखा इन्सान नाव से नदी पार कर रहा था। उसने मल्लाह से पूछा कि क्या तुम हिसाब जानते हो? वह अनपढ़ नाव वाला कहने लगा कि मैं तो कभी स्कूल गया ही नहीं। मैं जितने पैसे मांगता हूँ, सवारी दे जाती है। बस इतना ही जानता हूँ। वह विद्वान कहने लगा कि जब तुम्हें हिसाब नहीं आता, तो तेरी चौथाई ज़िन्दगी तो बेकार चली गई। फिर आगे पूछा कि कुछ लिखना-पढ़ना जानते हो क्या? नाव वाला कहने लगा, मै। लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानता। वह विद्वान कहने लगा कि जब तुझे यह सब नहीं आता, तो तेरी आधी ज़िन्दगी बेकार चली गई। मल्लाह चुप रहा। चलते-चलते कुछ हवा चलनी शुरू हुई। थोड़ी सी आंधी का रूप बना। जब नाव डगमगाने लगी तो उस नाव में बैठे विद्वान से मल्लाह ने पूछा, 'क्या तुम्हें तैरना आता है?' वह कहने लगा कि तैरना तो नहीं आता। मल्लाह कहने लगा कि आपने मुझ से कई चीज़ें पूछीं, जो कि मुझे नहीं आतीं। फिर आपने कहा कि इस प्रकार मेरी आधी ज़िन्दगी बेकार चली गई। यहाँ तो तैरने की ज़रूरत है। यदि आपको तैरना नहीं आता तो आपकी पूरी ज़िन्दगी यहाँ डूबने वाली है, समाप्त होने वाली है। हम ऐसी कहानियों के पीछे छिपी चेतावनी, शिक्षाओं को समझें कि सभी विद्याओं से पहले प्रभु ज्ञान की आवश्यकता है, वरना हमारा जीवन निरर्थक चला जायेगा। सांसारिक ज्ञान से तो हम अभिमानी हो जाते हैं, क्योंकि यह हमें प्रभु से दूर ले जाता है।

नाम के बगैर इन्सान की कोई भी कीमत नहीं। जैसे एक पक्षी, जिस के पंख कटे हों, उसकी क्या कीमत रह जायेगी? एक गाय दूध देने वाली होती है। उसकी कीमत है। जो गाय दूध नहीं देती, उसकी आप कितनी कीमत डालते हैं। इसी तरह इन्सान है। जिस इन्सान के जीवन में ये नाम बस जाता है उसका मोल पड़ जाता है, वह वास्तव में इस संसार में आने का लाभ प्राप्त कर लेता है। इस नाम को जानने और जीवन में इसका व्यवहार करने से ही लाभ है। इसी से इन्सान की कीमत है। यही सत्य वस्तु है। जीवन में इसी की कमाई करनी है। पर जिस चीज़ को बचाना है, उसको तो इन्सान बचाता नहीं और सभी कुछ बचाने को फिरता है, और सभी कुछ कायम रखने को फिरता है। झूठी वस्तुओं के लिये इन्सानों के साथ टकराता भी है।

एक सेठ का महल है। महल में आग लगी है, नौकर–चाकर भाग–दौड़ रहे हैं। कह रहे हैं कि सेठजी! आपकी कीमती चीज़ें बताओ, उन्हें बचा लें। आग बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। सेठ ने एकदम कहा कि फलां कमरे में चले जाओ, वहाँ आपको एक तस्वीर दिखाई देगी। तस्वीर के पीछे एक तिजोरी बनाई गई है। उस तिजारी में से आप मूल्यवान हीरे उठा लाओ। हीरे आ गये। फिर सेठ से पूछा कि अभी एक कमरा बचा हुआ है और कुछ ध्यान में हो तो बताओ। सेठ बोला – उसमें एक बहुत ही कीमती सोने से मढ़ा गलीचा पड़ा है, उसे उठा लाओ। वह भी आ गया। थोड़ा समय बीता कि सारा महल आग की लपेट में आ गया। अचानक एक नौकर ने सेठ जी से पूछ लिया – सेठ जी, छोटे मालिक कहाँ हैं? सेठ जी को एकदम पसीना आ गया। सांस रुक गया और कहने लगा कि जब आग लगी थी, तो वह मेरे कमरे में सो रहा था। जब आग ठण्डी हुई तो अंदर जाकर देखते हैं कि उस कमरे में उस लड़के की जली हुई लाश पड़ी है। सेठ रोने लगा कि सबसे कीमती वस्तु तो मेरा अपना बेटा था, पर इस माया ने मुझे ऐसा भरमाया कि मैं सब चीज़ें ही बचाता रहा लेकिन जिसके लिये बचाता रहा, वह चीज़ ही चली गई। कहने का भाव है कि मानव! यह तो तुझे मनुष्य जन्म मिला है, और इस मनुष्य तन को जो चेतन सत्ता चला रही है, जिसको तू आत्मा कहता है, इस आत्मा को संवार ले। इस आत्मा को अगर नहीं संवारा, इसको अगर अन्धकार में ही रखा, तो यह लोक भी बेकार गया और परलोक में भी यह जीवात्मा चक्कर में ही पड़ी रहेगी। इसका चौरासी का चक्कर बना ही रहेगा। इस चक्कर से बचने के लिये ही तुझे यह मनुष्य जन्म मिला है।

महापुरुष कदम–कदम पर यही चेतावनी देते हैं कि इन्सान! काल के आने से पहले ही अपना जीवन संवार ले। यह जो काल है, यह बताकर नहीं आता। लेकिन इन्सान कल पर छोड़ता है। कहता है, बुजुर्ग होकर भक्ति शुरू करूंगा। बूढ़ा होकर प्रभु भक्ति कर लूंगा। अभी तो जवानी के दिन हैं, हंसने–खेलने के दिन हैं, मौज मनाने के दिन हैं, लेकिन इंसान को अगले पल का भी भरोसा नहीं होता।

इन्सान अन्य किसी काम को कल पर नहीं छोड़ना चाहता। यह तो नहीं कहता कि अभी दस–बीस बरस बीत जायें, फिर जायदाद बना लूंगा। कहता है कि नहीं, यह तो अभी बनानी है और जो पदार्थ इकट्ठे करने हैं, वे अभी करने हैं। वे क्यों नहीं आगे के लिये छोड़ता? क्योंकि उनकी हमें बहुत कीमत

नज़र आती है। कई दफा यह भी कह देते हैं कि शरीर का क्या भरोसा है। ये बच्चे छोटे हैं, इनका क्या बनेगा? जो सांसारिक ज़िम्मेदारियाँ हैं, उनका ध्यान तो है, लेकिन चौरासी के चक्र से (आवागमन से बचने का) आत्मा को मुक्त कराने का कोई ध्यान नहीं।

आजकल लोग बिना प्रभु को जाने भक्ति कर रहे हैं। बिना प्रभु को जाने हुये भक्ति किसकी कर रहे हैं? जिसके पास यह ज्ञान है, यह प्रभु की जानकारी है, उसके साथ नाता जोड़कर हम भक्ति कर सकते हैं। कहा भी है कि *'प्रथम भक्ति संतन कर संगा'।* ये संग क्या होता है? संग सिर्फ शरीर के दर्शन नहीं हुआ करते। हम बच्चे को कुछ विद्या देना चाहते हैं ताकि पढ़ लिख जायें। क्या ऐसा कभी हुआ है कि पिता बच्चे का हाथ पकड़कर स्कूल की बिल्डिंग के पास ले जाये और कहे कि देखो स्कूल की खिड़की में से जो उस्ताद दिखता है, बड़ा ही लायक है। वो देखो, वो बच्चों को पढ़ा रहा है। भाव बच्चों को अध्यापक की केवल शक्ल ही दिखाने से हमारा बच्चा पढ़-लिख नहीं जाता। हम जानते हैं कि शिक्षक के पास उसको छोड़ना पड़ता है उसकी संगति करानी पड़ती है। तभी वो विद्या हासिल कर सकता है। इसी तरह से ज्ञान जिसके पास भी है, जिस घट में भी है, हम अगर उसके साथ नाता जोड़ लेते हैं, तो हमें भी वो ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ज्ञान जानकारी का नाम है। जैसे दुनिया की अन्य चीज़ों की हम जानकारी हासिल करना चाहते हैं, इसी तरह से अपने परमात्मा की जानकारी हासिल करने की ज़रूरत है। इस आत्मा के मूल की, इस निज घर की पहचान करना आवश्यक है, क्योंकि इस आत्मा के कारण ही तो शरीर है। शरीर को आत्मा के कारण ही सम्बोधित किया जाता है। हम जानते हैं कि अगर आत्मा नहीं, चेतन सत्ता नहीं, तो फिर शरीर की भी कोई कीमत नहीं रह जाती। हाथ होते हैं, पांव होते हैं, जुबान होती है। सब कुछ होता है। अगर चेतन सत्ता, चलाने वाली आत्मा नहीं, तो उसी शरीर से नफरत हो जाती है। उस शरीर का कोई अंग काम नहीं कर सकता। कहने का भाव यह है कि हमने अपनी इस आत्मा को संवारना है। इस आत्मा का ही मोल है। इसको अगर हमने संवार लिया, तो संसार में आना सफल हो जायेगा। हमारा संसार में आने का मनोरथ पूरा हो जायेगा। जन्मों-जन्मों से भटकी हुई, आवागमन के बन्धन में पड़ी हुई आत्मा के बन्धन टूट जायेंगे। ये बन्धन टूटना ही इसके लिये सुख का, चैन का, सहज अवस्था का कारण है। इन्सान को चाहे जो मर्जी प्राप्त हो जाये, दुनिया भर के सामान

प्राप्त हो जायें, लेकिन अगर यह आत्मा बन्धन में जकड़ी रही, तो इसको कभी भी सुख, कभी भी चैन मिलने वाला नहीं।

करउ बेनती सुनहू मेरे मीता संत टहल की बेला।
ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगे बसनु सुहेला।।

इन्सान को जगाने की कोशिश सन्त करते हैं कि हे इन्सान, तू इस संसार में आया है, तो यह काम कर ले। इस काम को कर लेगा तो तेरा पार उतारा हो जायेगा। क्योंकि ब्रह्मज्ञान के बिना मृत्यु का भय बना रहता है। इसीलिये सन्तों ने मानव को चेतावनी दी है कि –

कबीर संगति करीए साध की संति करे निरवाहु।
साकत संग न कीजीये जा ते होई बिनाहु।।

अगर साधु की संगति हमें प्राप्त होती है, तो ब्रह्मज्ञान हो जाता है। जैसे और कुछ भी हमें दुनियावी ज्ञान प्राप्त करना है, तो जो जानकार होता है, उसी से वह ज्ञान मिलता है। हमें अंग्रेज़ी पढ़नी है तो जो अंग्रेज़ी जानता है, वो हमें अंग्रेज़ी पढ़ा सकता है। इसमें हम कोई शर्त नहीं लगाते कि वह जो अंग्रेज़ी पढ़ाता है, वह तो धोती पहनता है, वह तो टोपी पहनता है, वह तो पगड़ी पहनता है, वह तो किसी और जाति से ताल्लुक रखता है। हम बच्चों को स्कूलों में दाखिल कराते हैं, तो क्या कभी हम पहले वह लिस्ट देखते हैं कि इस स्कूल में जो टीचर पढ़ाने वाले हैं, वे हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, सिख हैं, ईसाई हैं? कौन सी जाति से ताल्लुक रखते हैं, कौन सा पहरावा है। डॉक्टर की भी जाति नहीं देखते। इसी तरह सन्तों, महात्माओं की भी जाति नहीं देखी जाती, बल्कि उनके ज्ञान से ही हमें लाभ उठाना चाहिये। कहा भी है कि –

जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान।

जो प्रभु के विष्य में अज्ञानी है, उन्हें ही ज्ञान की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। वे अगर खुद ही जानकारी प्राप्त करेंगे, तो उनको मुक्ति मिलेगी। किसी और के ज्ञान लेने से उन्हें कोई लाभ नहीं होने वाला। जिसके शरीर पर गन्दगी लगी हुई है, उसी को ही स्नान करना पड़ता है। अगर वह स्नान नहीं

करता, वह यही कहता रहे कि मैंने और क्या करना है, मेरे बड़े भाई ने तो स्नान किया ही हुआ है। बस काफी है। मैं उज्जवल हो जाऊँगा। ऐसा कभी भी होने वाला नहीं। जिस शरीर को रोग लगा हुआ होता है, उसको ही दवा दी जाती है। इसी तरह से इसमें कोई शक नहीं कि जिन्होंने इस नाम, हरि के साथ अपना नाता जोड़कर मुख उज्जवल किया और एक ऐसा जीवन व्यतीत करके गये कि युग बीत जाने पर भी आज उसकी श्लांघा हो रही है। लेकिन वो श्लांघा या उपमा उनके जीवन की गाथा गाने, केवल दोहरा लेने से हमारी अवस्था, ऊँची होने वाली नहीं। जैसे कर्म उनके थे, वैसा कर्म करेंगे तभी हमारा पार उतारा हो सकता है। साध संगत, यही दातार के आगे अरदास है कि यही तो मानव को मौका मिला है। अगर इसी में मुक्ति प्राप्त कर लेता है, तो मुबारकबाद उसको मिलती है। अगर इस जन्म को प्राप्त करके भी, हीरे को खो देता है, हीरे की कद्र नहीं डाल पाता है, तो उसको कभी भी मुबारकबाद नहीं मिलती, बल्कि उसको बुरा कहा जाता है। इन्सान को मानव का जो जन्म मिला है, इसी जन्म में इसने अपनी आत्मा का कल्याण करना है और अपने इस जीवन को सुखी, आनन्दमय बनाना है, परलोक सुहेला करना है। यह समय अगर चला जाता है तो फिर उसे धिक्कार है।

एक बार, राजस्थान के इलाके में, गंगानगर जाने का मौका मिला। चलते जा रहे हैं। दायें भी रेत, बायें भी रेत ही रेत। चारों तरफ मिट्टी उड़-उड़कर आँखों में पड़ती है। लेकिन चलते-चलते क्या देखते हैं कि कुछ हरे पेड़ नज़र आने शुरू हो गए, कुछ खेती नजर आनी शुरू हो गई। पूछा, भाई साहब इसका क्या कारण है? कहते हैं, वहाँ से एक नहर गुज़र रही है। वहाँ पर पानी का एक साधन है। चारों तरफ हमने देखा कि हरियाली ही हरियाली नज़र आनी शुरू हो गई। इसी तरह से जिस मन में भी यह नाम रूपी अमृत आ गया, वहाँ पर कहीं कठोरता नज़र नहीं आती। वैर, ईर्ष्या, नफरत यह तो वीरानापन है, यह वहाँ नज़र नहीं आता। वहाँ पर हमें सुख प्राप्त होता हैं, वहीं पर हमें चैन प्राप्त होता है। ऐसे सन्त, ऐसे महापुरुष जिनके मन में भी प्रभु का निवास हुआ है, उनके पास बैठने को जी चाहता है, उनसे हमें आनन्द मिलता है। उनके पास एक भक्ति की महक होती है। प्रेम जहाँ पर हो, तो कौन इन्सान कहेगा कि मैंने यहाँ नहीं बैठना, क्योंकि यहाँ पर महक आ रही है। बल्कि जहाँ महक आ रही हो, यदि वहाँ से कोई गुज़र रहा है, उसको भले ही ज़रूरी काम क्यों न हो, फिर भी उसका वहाँ रूक जाने को मन करता है और अगर कहीं से बदबू निकल रही हो, तो इन्सान अपनी नाक

पर कपड़ा रख लेता है और सोचता है कि यहाँ रूकना ठीक नहीं। यहाँ से निकल जाना चाहिये, क्योंकि बहुत परेशानी हो रही है, बहुत ही गन्दी बदबू आ रही है। इसी तरह से एक सन्त, एक भक्त जिसके पास सत्कर्म रूपी महक होती है, मीठे बोलों की महक होती है, वहीं पर हर इन्सान को सुख–चैन मिल सकता है। जहाँ पर ईर्ष्या या निन्दा की बदबू हमें नज़र आयेगी, वहाँ पर कभी कोई इन्सान रुकना पसन्द नहीं करता।

इसी संसार में आकर हम दुनिया की सभी चीज़ें बचाने की कोशिश करते हैं। हम चाहते हैं कि हमारा कारोबार बना रहे, हमारे मकान भी बने रहें, हमारा शरीर भी अच्छा रहे। सभी कुछ हासिल करना चाहते हैं। लेकिन ये सभी तो चन्द बरसों के लिये है। 30–40 या 50–60 बरस की आयु भोगकर आदमी चला जायेगा। लेकिन इस जीवात्मा की आयु 20, 30, 50 या सौ बरस की नहीं। अगर इसको नहीं संवारा, तो यह जलती रहेगी, जन्म लेती रहेगी, मरती रहेगी। आवागमन का बन्धन इसके साथ लगा रहेगा या इसकी तड़पन, इसकी परेशानी और दुख कभी दूर नहीं हो पायेंगे।

निरंकार

पारब्रह्म को 'निरंकार' कहकर हम किसी नये मत का प्रचार नहीं कर रहे जिसे वेदों–शास्त्रों में 'निरंकार' कहकर पुकारा गया है, हम उसे ही 'निरंकार' के नाम से याद करते हैं। 'निराकार' और 'निरंकार' में केवल भाषा का ही अन्तर है। अर्थ दोनों का एक ही है। यह निरंकार प्रभु पत्ते–पत्ते, डाली–डाली में समाया हुआ है। कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ यह शक्ति विद्यमान न हो। आज तक जितने भी पीर–पैगम्बर–अवतार हुये हैं और हमारे जितने भी धर्म–ग्रन्थ हैं, सभी यह बताते हैं कि यह निरंकार, यह दातार हमारे अंग–संग है। हमारी आँखों से भी नज़दीक है। यह परमात्मा, जिसे अपने–अपने समय पर सन्तों–महापुरुषों ने भिन्न–भिन्न नाम से याद किया – किसी ने इसे 'अल्लाह' का नाम दिया, किसी ने इसे 'गॉड' कहकर पुकारा और किसी ने इसे 'वाहे गुरु' का नाम दिया – यह परमात्मा है एक ही। इस निराकार, पारब्रह्म परमात्मा को सद्गुरु की कृपा से जो जान लेता है, इसी का ध्यान करता है, इस शक्ति के मुकाबले प्रकृति की किसी अन्य शक्ति को महत्ता नहीं देता, वही

निरंकारी है। निरंकार–प्रभु को जानने–मानने वाले इन भक्तों के संगठन को 'सन्त निरंकारी मिशन' के नाम से जाना जाता है।

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी परमात्मा का कोई आकार नहीं। इसीलिये इसे निरंकार (निराकार) कहा जाता है, वह स्वयं सारी सृष्टि का मालिक है, सारी ताकतों का मालिक है, सर्वत्र समाया हुआ है। कण–कण में है, हर जगह मौजूद है, पत्ते–पत्ते में है, डाली–डाली में है। जिसके बारे में कहा गया है –

ज़र्मीं ज़मा के विखे समस्त एक जोत है।
न घाट है न वाद है, न वाद–घाट होत है।।

फिर भी हमारे मन में अज्ञानता के कारण इसकी गैरहाज़िरी है। इस कारण हम एक–दूसरे से ख्वामखाह की बहस में पड़ जाते हैं। यह एक ही ताकत है, एक ही सत्ता है। कोई इसको 'बिट्ठी' कह रहा है, 'विठोवा' कह रहा है, कोई इसे 'परमात्मा' तो कोई 'निराकार' कह रहा है। कोई 'वाहेगुरु' कोई 'अल्लाह' तो कोई 'राम' कह रहा है। अनेक नाम इस प्रभु के हैं, सत्ता (वस्तु) एक ही है। इस एक को न जानने के कारण ही, हम दूसरे को ख्वामख्वाह बेगाना मान बैठते हैं और संकीर्णताओं में पड़ जाते हैं। एक ही ताकत है, एक ही मालिक है, और एक ही नूर हर एक में वास कर रहा है। ऐसे इस एक को एक कर के जाने, एक कर के मानें, तब सही मायनों में हम एक हो पायेंगे।

इसी परमात्मा की महिमा गाते हुये सन्त कहते हैं कि हे प्रभु! तू बेअंत है, तू बेमिसाल है। तेरी कृपा से ही सजे हुये हैं। तेरी कृपा से ही हमें सब कुछ प्राप्त हो रहा है। सृष्टि की सारी कायनात की तू ही रचना करने वाला है, तू ही पालना करने वाला है। इसका अन्त भी तेरे ही हाथ में है। जैसे आप जानते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश – यह तीनों ही रूप परमात्मा (God) के हैं। God में अगर हम G को जैनेरेटर (GENERATOR) कह दें तो भाव है कि जो पैदा करने वाला है। अगर हम ÓOÔको ऑपरेटर (OPERATOR) कह दें तो भाव है कि जो संचालन करता है, जो ऑपरेट करता है, जो चलाता है। ÓDÔको अगर हम डेस्ट्रायर (DESTROYER) कह दें, जो प्रलय करता है। कहने का भाव कि यह प्रभु के गुण हैं, लेकिन आज इन्सान केवल नामों

तक ही सीमित रह गया है। जिसके सब नाम हैं, उस परमात्मा को जानना ही वास्तविक ज्ञान है।

यह निराकार परमात्मा घट-घट में समाया हुआ है। इसका कोई आदि अन्त नहीं पाया जा सकता। यह कल भी था, आज भी है और आगे भी रहेगा। आज इन्सान इतिहास से यह तो जान पाता है कि पहले इन्सान की शक्ल-सूरत कैसी थी, लेकिन इस परमात्मा की होंद (अस्तित्व) के बारे में इन्सान कुछ नहीं जान पाता, क्योंकि इसका कोई आदि-अन्त नहीं पाया जा सकता। यह ऐसी शक्ति है, जो वास्तव में सारे संसार का संचालन कर रही है। यही शक्ति सदैव सत्य रहने वाली है। सत्य हम उसी को कहते हैं जो तीनों कालों में एकरस रहता है जो अभी कुछ हो, चन्द घण्टों में कुछ और हो जाये, चंद वर्षों में कुछ और हो जाये, उसे हम सत्य नहीं कह सकते। वह मिथ्या माया है।

इस निराकार परमात्मा के बारे में लिखा है कि - *'आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु, नानक होसी भी सचु।'* भाव, तीन काल सत्य रहने वाली सत्ता 'एक अकाल पुरख' ही है। इसके बारे में लिखा है -

बिनु पग चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी वकता बड़ भोगी।

इस एकरस रहने वाले परमात्मा को आग जला नहीं सकती, शस्त्र काट नहीं सकते, वायु उड़ा नहीं सकती। इसका आदि-अन्त नहीं पाया जा सकता। जो ऐसे गुणों वाले दातार का आसरा ले लेता है, आधार मानता और जानता है, वह फिर किसी के समाप्त करने से समाप्त कैसे हो सकता है? यह दातार अमर है। जो भी आत्मा इसके साथ जुड़ जाती है, वह भी अमर हो जाती है। संत कबीर कहते हैं -

मैं न मरउ मरिबो संसारा।
अब मोहि मिलिओ है जीआवनहारा।।

यह आत्मा के लिये कहा जाता है। क्योंकि यह शरीर तो खत्म होने वाला है। यह मिट्टी का एक पुतला है। पुरातन समय से हम देखते आ रहे हैं कि संसार पर परोपकार करने वाले का शरीर भी सदैव कायम नहीं रहा। दूसरी ओर सोने की लंका का मालिक होने के बावजूद रावण जैसे जुल्म करने वाले, का शरीर भी कायम नहीं रहा। शरीर तो हर इन्सान का ही चला जाता है। कोई इन्सान चन्द वर्ष की आयु भोग कर चला जाता है तो कोई सौ वर्ष की आयु भोग कर चला जाता है। फिर अमर जीवन किसको कहा गया है? जो जीते जी मर जाता है, जो अपनी 'मैं' को मार देता है। निराकार–दातार के साथ जुड़कर अहंकार मिटा लेता है। उसका जीवन ही अमर जीवन है।

जिस परमात्मा की अनेक निशानियां (पहचान) सन्तों ने बतलाई हैं इसको जानना है। इसकी पहचान करनी है, इस निज घर को ही जानना है। जिसको जब यह मंज़िल प्राप्त हो जायेगी, उसका तभी यही लोक भी सुखी हो जायेगा और परलोक भी सुहेला हो जायेगा।

केवल वस्तु का नाम लेने या पढ़ने मात्र से ही हमारा गुज़ारा नहीं हो सकता। जिस तरह से जल या पानी हम लेते हैं तो केवल नाम से ही हमारी प्यास नहीं बुझती। वह जल पीना पड़ता है, वह पानी ग्रहण करना पड़ता है, तब कहीं जाकर हमारी प्यास बुझती है। इसी तरह से कोई इन्सान केवल धन–दौलत का नाम ही लेता रहे, धन–दौलत की रकमें ही लिखता रहे तो वह अमीर नहीं हो सकता। जितने भी पदार्थ दुनिया में अपनी आंखों से हम देख रहे हैं, उन सभी वस्तुओं के नाम अवश्य हैं, लेकिन केवल नाम से ही गुज़ारा नहीं हो सकता। हमें छोटी से लेकर बड़ी चीज़ तक की ज़रूरत है। छोटी सुई से लेकर बड़े–बड़े हवाई जहाज़ का स्वरूप हमारे सामने आता है, तो हम उससे कुछ लाभ ले पाते हैं। इसी तरह से अगर इस प्रभु का केवल हम नाम ले रहे हैं, जुबा नही केवल इसका नाम उच्चारण कर रही है तो कोई लाभ नहीं, जब तक उसके साथ हमारा नाता नहीं जुड़ता। एक इन्सान ने एक कागज़ के टुकड़े पर रकम लिखकर दे दी और हलवाई से मिठाई माँगने लगा। लेकिन वह बात नहीं बनी। आखिर उस हलवाई ने भी एक कागज़ के ऊपर एक किलो बरफी लिखकर उसको थमा दी कि यह ले, तू अपनी मिठाई ले ले। वह बोला, यह मिठाई थोड़े ही है, यह तो कागज़ के टुकड़े पर मिठाई लिखी हुई है। हलवाई भी कहने लगा कि जिस तरह तूने रूपया कागज़ पर लिखकर दे दिया है, उसी तरह से मैंने मिठाई भी कागज़ पर लिखकर दे दी है।

मानव यह लिखा हुआ पढ़ तो लेता है कि – *'सीय राम मय सब जग जानी।'* यानि वह प्रभु सर्वत्र समाया हुआ है। लेकिन जब मानने का वक्त आता है, क्या उस वक्त भी सर्वत्र समाया मान रहा होता है? मानने के वक्त तो इन्सान इस परमात्मा को सीमित करता है। कहता है, प्रभु तो सातवें आसमान पर बैठा हुआ है। वहीं पर बैठकर इस धरती का संचालन कर रहा है। या फिर किसी और स्थान तक ही प्रभु को सीमित कर देता है। क्या प्रभु की 'डेफिनेशन' (परिभाषा) को खुद ही नहीं काट रहा है? कहा जा रहा है कि प्रभु सर्वत्र समाया हुआ है, पर इन्सान मान कब रहा है? कहता है कि यह तो किसी और स्थान पर बैठा हुआ है। जब परमात्मा सर्वत्र समाया हुआ है, तो फिर इन्सान इससे क्यों बिछुड़ा हुआ है? यह कैसे संभव है? ये बिछौड़ा (वियोग) एक अज्ञानता का बिछौड़ा है।

मानव अपनी अज्ञानता के कारण अपने सदा संग रहने वाले प्रभु को न जाने कहाँ–कहाँ ढूँढ़ता फिर रहा है। जितने भी महापुरुष सन्त इस संसार में आये, उन्होंने इस निराकार–दातार को अंग–संग ही जाना है, अनुभव किया है।

सन्तों ने भटकी हुई मानवता को, भटके हुये इन्सानों को सदैव यही बात समझाने की कोशिश की है, कि तू इस निराकार–प्रभु–परमात्मा को किसी एक स्थान पर निश्चित समझता है, लेकिन यह प्रभु तो कण–कण में व्याप्त है और हर जगह मौजूद है। परन्तु इसकी प्राप्ति तभी संभव है, जब तुझे ज्ञान की नज़र मिल जाती है, दिव्य चक्षु तुम्हें प्राप्त हो जाते हैं। जब देखकर मन इसे धारण कर लेता है, मन इसे अपना लेता है।

जिस तरह से एक फूल में सर्वत्र सुगंध मौजूद होती है, उसी तरह से निरंकार सर्वत्र मौजूद है। हम शर्बत का गिलास पीते हैं, शर्बत उस तमाम गिलास में होता है। जो भी पीता है, एक–एक घूंट के साथ, उसके मुँह में शर्बत जा रहा होता है। इसी तरह ये परमात्मा, यह निराकार, यह दातार भी कण–कण में व्याप्त है। इन्सान तू इसे जंगलों में क्यों सोच लेता है? तू क्यों इसे गुफाओं, कन्दराओं में सोचे बैठा है? इसकी खोज तो महापुरुष–सन्त सदा करते रहे, लेकिन अन्त में निबेड़ा कहाँ पर जाकर हुआ? जब ब्रह्मज्ञानी की शरण मिल गई, जब ज्ञानी के साथ नाता जुड़ गया, तभी इस अज्ञान के अंधकार का विनाश हो गया। यह भ्रम दूर हो गया कि निराकार परमात्मा

कहीं दूर है। यह सातवें आसमान पर है, कहीं गुफा–कन्दराओं में है या फिर पर्वत ही परमात्मा है या फिर सूरज ही परमात्मा है या जल ही परमात्मा है, ये सारे भ्रम दूर हो गये। यह जानकारी हासिल हो गई कि ये सभी कुछ दातार में ही समाया हुआ है। दातार कण–कण में है, लेकिन सभी चीज़ें परमात्मा नहीं। यह इनसे न्यारा है। सब खेल रच के भी इनसे न्यारा रहता है। ये सभी चीज़ें जो दृष्टिमान हैं, मिट जाती हैं, इनके ऊपर तो अग्नि का भी असर है, तेज धर वाले अस्त्र–शस्त्र का भी असर है। हर एक प्रकार से जल का भी उसके ऊपर असर है। लेकिन यह परमात्मा, जो इन्हीं में समाया है, इसके ऊपर किसी चीज़ का असर नहीं। इसलिये इसको कहा गया है कि *'आदि सचु, जुगादि सच, है भि सच, नानक होसी भि सच।'* साध संगत! कहने का भाव कि इस निरंकार, इस दातार प्रभु को निकट करके जाना गया है। इसकी जानकारी निकट दिखा दी गई है।

गावै को जापै दिसें दूरि।
गावै को वेखै हादरा हदूरि।।

एक इसकी महिमा गा रहे हैं, इसको दूर समझ कर, लेकिन जो भक्त होते हैं वे इसको अंग–संग जानकर सम्बोधित करते हैं। इसको अंग–संग जानकर इसका सिमरन करते हैं।

□बिन देखे की भक्ति करना अम्बर नू हथ लाणा ऐ□

बगैर देखे की गई भक्ति करना आकाश को हाथ लगाने के समान कठिन है। जब ब्रह्मज्ञानी साधु संग मिल जाता है, तभी इस निरंकार का इस प्रकार अनुभव होता है–

तू भरपूरि मैं जानिया दूरि।
जो कुछ करी सु तेरे हदूरि।।

तू तो भरपूर है, कण–कण में समाया हुआ है, मैं तुझे दूर माने बैठा था, मैं तुझे बहुत फासले पर माने बैठा था। एक इन्सान सामने बैठा हुआ है, फासला नहीं है। लेकिन पर्दा आँखों के सामने आ जाये तो बहुत दूरी हो जाती हे। हालांकि दूरी कुछ नहीं, परन्तु पर्दे ने बहुत दूरी बढ़ा दी। इसी तरह अज्ञान का अन्धकार परमात्मा के निकट होते हुये भी दूर कर देता है।

अज्ञानता के अन्धकार में ही इन्सान इस निराकार दातार को दूर माने बैठा है। महापुरुषों, सन्तों ने हमेशा संसार की इस अज्ञानता को दूर किया है। इस अन्धकार का विनाश ज्ञान की रोशनी से हो जाता है। इसका विनाश और किसी तरह से नहीं होता। अंधकार का विनाश क्या कोई बोझा ढोने से होता है? कोई टोकरियां भर-भर कर कमरे में से अन्धकार बाहर किया जा सकता है? ऐसा नहीं, अन्धकार जब भी दूर हुआ है, रोशनी के द्वारा ही हुआ है। इसी तरह अज्ञानता का अन्धकार भी ज्ञान की रोशनी के द्वारा ही दूर होता है। ज्ञान की ज्योति जहाँ पर जल जाती है, वहाँ पर तमाम अन्धेरे मिट जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं।

प्रभु-परमात्मा ही सत्य है। यही हमेशा रहने वाला है। इसी को ही सत्य की संज्ञा दी गई है, क्योंकि यह कल भी सत्य था, आज भी सत्य है और आगे भी सत्य रहने वाला है। इसमें कोई तबदीली नहीं आती है। यह एकरस रहता है। इस एकरस रहने वाले प्रभु-परमात्मा के साथ जब इस जीव-आत्मा का नाता जुड़ जाता है, तो इसको भी वैसी ही अवस्था प्राप्त हो जाती है, इस प्रभु ईश्वर, परमपिता की पहचान कर लेने से जीव के मन के भ्रम दूर हो जाते हैं, जीवन में उजाला हो जाता है।

इस निरंकार की महिमा युगों-युगों से गाई गई है। यह भी कहा गया है कि इसकी महिमा गाई नहीं जा सकती। शरीर के करोड़ों नाम हैं, और इस एक-एक रोम के भी करोड़ों जुबानें लग जायें, तब भी इस प्रभु की महिमा गाई नहीं जा सकती। जैसे कहा है -

'सात समुन्दर मसि करूं, लेखनी सब बनराय।
धरती सब कागद करूं, हरि गुण लिखे ना जायं।।'

जितना समन्दर का पानी है, उसकी अगर मैं स्याही बना लूँ, जितनी धरती है, उसको मैं कागज़ बना लूँ, जितने पेड़ हैं, वनस्पति हैं, इनको मैं अगर कलम बना लूँ, तो भी हे निरंकार! हे परमात्मा! हे अनन्त स्वामी! तेरी महिमा न कही जा सकती है न लिखी जा सकती है।

इसीलिये बाबा अवतार सिंह जी ने कहा –

'अनहद ते असगाह स्वामी, तैनूं लख प्रणाम करां।'

कि हे अनहद परमात्मा! तू हदों से रहित है, हदों से बाहर है तू बिलकुल अनहद है। तुम्हें मेरे लाख–लाख प्रणाम। गुरु द्वारा जो शब्द दिया गया है, इसका ज्ञान दिया गया है, यह अनहद शब्द (ज्ञान) जिसने प्राप्त कर लिया है, जिसने अपने मन में बसा लिया है, वही वास्तव में आठों पहर आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

मानव जीवन का यही उद्देश्य है, यही प्रयोजन है कि हर इन्सान इस सत्य को, इस हरि को, इस निरंकार को प्राप्त करे। जो कल भी था, आज भी है और आगे भी रहने वाला है। जो कभी कम–ज्यादा होने वाला नहीं। बाकी सब चीज़ें तो कम–ज्यादा होने वाली है। एकरस रहने वाली नहीं। जितनी भी चीज़ें इस संसार में देख रहे हैं, सूरज है, धरती है, पानी है। पानी कभी गर्म होता है, कभी ठण्डा होते–होते सर्दियों में बरफ भी बन जाता है और गर्म करने से तो वह भाप भी बन जाता है। वह कभी एकरस नहीं रहता। इसी तरह से सूरज भी एकरस नहीं रहता। सूरज भी एक समय पर है, लेकिन थोड़ी देर के बाद वहाँ पर भी सूरज नहीं होता, उसकी रोशनी नहीं होती। जैसे अभी आप देखते हैं कि इस समय सूरज की रोशनी यहाँ पर नहीं, यह धरती के दूसरी तरफ चली गई है। इसी तरह से सभी चीज़ें जो हम देखते हैं, ये एकरस नहीं रहती हैं। स्थिर नहीं रहती हैं। अगर इन्सान इन्हीं के ऊपर निर्भर करता है, तो जिस तरह से ये डोलयेमान हैं, एकरस नहीं रहतीं, इसी तरह से इन्सान के मन को भी चैन नहीं मिलता, इसको भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती। यह सहज अवस्था कब प्राप्त होती है? जब इस सहज प्रभु के साथ हमारा नाता जुड़ जाता है, जो एकरस रहने वाला है। चाहे समय कैसा भी आ जाये, चाहे हम किसी भी स्थान पर चले जायें, यह एकरस ही रहता है। हमेशा कायम–दायम रहता है। इस कायम–दायम रहने वाली सत्ता के साथ जितना भी नाता जोड़ लिया जाता है, वह हमेशा के लिये एकरस अवस्था वाला संत बन जाता है।

इस आत्मा (चेतन सत्ता) के कारण ही इस शरीर का चलना फिरना है, यही जीवन है। इसी को वास्तव में हमने पहचान करनी है कि हम यह शरीर नहीं, बल्कि एक आत्मा हैं। आत्मा की ही महत्ता है। अगर आत्मा को हमने पाया नहीं और सभी काम हम करते रहे, शरीर को सजाते रहे, श्रंगारते रहे, इसको हृष्ट–पुष्ट करते रहे, लेकिन इस आत्मा का हमने कुछ नहीं किया, इस मन को हमने इस प्रभु के साथ नहीं जोड़ा तो हमारा इस संसार में आना व्यर्थ ही चला जायेगा। तभी तो महापुरुषों ने कहा है कि –

रैणि गवाई सोई कै दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ।।

ये हीरे जैसा अमोलक जन्म भी कौड़ियों के भाव चला जाता है। महापुरुषों ने जो भी इस प्रभु के बारे में कहा है, इस पर हमें विचार करना है। इसे अपनाना है। परमात्मा का केवल नाम ही नहीं लेना है। जैसे, कुछ तोते कहीं से सीख गये कि – 'शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, हमें फंसाना चाहेगा, हम नहीं फसेंगे। ऐसी बातें वे बोलते थे, तो शिकारी ने समझा कि मैं तो इनको अब नहीं पकड़ पाऊँगा। शिकारी बहुत उदास हो गया। सोचने लगा कि तोते बेचकर ही तो मैं अपने परिवार का गुज़ारा करता हूँ, परन्तु अब तो ये समझ गये हैं, अब मैं भूखा मरूँगा। वह उदास होकर बैठ गया। जब शाम होने लगी, तो उसने सोचा कि मेरे पास जाल भी है, मेरे पास दानें भी हैं, मैं बिछाकर तो देखूँ। उसने जाल बिछा दिया और दानें वहाँ बिखेर दिये। तोते आये और जाल के ऊपर बैठ गये और दानें चुगने लगे। वो तब भी यही बोल रहे थे कि 'शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा हमें फंसाना चाहेगा, हम नहीं फसेंगे।' शिकारी ने उन सभी को लपेट कर कन्धे पर रख लिया। बाज़ार में बेचने के लिये जा रहा था। फिर भी वे तोते यही कहे जा रहे थे कि 'शिकारी आयेगा, जाल बिछायेगा, हमें फंसाना चाहेगा, हम नहीं फसेंगे।'

कहने का भाव कि तोतों ने उस सुनी सुनाई बात को रट लिया, उसको बोलना तो शुरू कर दिया, लेकिन उसके मायने (अर्थ) नहीं जानते थे। उसका मतलब नहीं जानते थे। उसका अर्थ नहीं समझ रहे थे कि क्या कहा जा रहा था? इसी तरह से प्रभु परमात्मा के बारे में हम अज्ञानता में हैं, तो हमारा काम नहीं बन सकता। हम आवागमन के चक्कर से तभी छुटकारा पा सकते हैं, जब हम इस परम पदार्थ को जान लें। जिस परमात्मा का हम नाम लेते

हैं, जिसके बारे में हम सुनते हैं, कि इस परमात्मा के साथ नाता जुड़ने से हम यम की मार से छूट सकते हैं, हम आवागमन के बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं। अगर प्रभु की केवल बातें ही कीं, इसकी सार को नहीं जाना, सहज अवस्था को प्राप्त नहीं किया, तो हमारा कुछ भी बनने वाला नहीं।

'राम राम' कहने मात्र से कोई लाभ नहीं होने वाला, जब तक कि हम राम की पहचान न करें। साबुन और जल की चर्चा करने से क्या मैला कपड़ा धुल जायेगा? मैला कपड़ा मैला ही रहेगा, जब तक पानी की संगति नहीं होती। इसी तरह से इस निर्मल सत्ता के साथ जब तक हमारा नाता नहीं जुड़ता, तब तक हमारा यह मन भी निर्मल होने वाला नहीं। उतनी देर हमारे भ्रम भी दूर होने वाले नहीं हैं और ये आवागमन का बन्धन भी समाप्त होने वाला नहीं। हमने इस प्रभु–परमात्मा को जानना है, जो सर्वत्र समाया हुआ है, जो अंग–संग है, जिसके बारे में कहा है कि यह सर्वत्र है, किसी एक स्थान तक सीमित नहीं।

जिनके मन में इस निरंकार, इस प्रभु–परमात्मा का प्रेम है और इसको अंग–संग जानकर इसकी अनुभूति करके इसके संग अपना नाता जोड़ रहे हैं, वही इससे लाभ उठा रहे हैं।

ध्यान से ज्ञान की संभाल

आत्मज्ञान की प्राप्ति तो गुरु की कृपा से सहज में हो सकती है, लेकिन इसकी संभाल बहुत कठिन है। जैसे हम अपने घरों में भी पौधे लगाते हैं। हम कहीं से कोई फल का पौधा, कोई फूलों का पौधा तो ले आते हैं और अपने घर के आँगन में लगा देते हैं, लेकिन केवल उसको घर के आँगन में लगा देने से ही हमें लाभ नहीं मिल जाते। हम उसकी संभाल करते हैं। उसको पानी भी देते हैं, खाद भी डालते हैं, ताकि वे पौधे बड़े हों, फूल, फल और अच्छी छाया दें। संभाल करते हैं तो सारे लाभ मिल जाते हैं।

इसी तरह से यह भी ज्ञान का बीज मन में डाला गया, इसको भी प्रफुल्लित करने के लिये सेवा, सिमरन, सत्संग की ज़रूरत होती है। जिस तरह से दीपक की एक लौ जलाते हैं। हवा में हम उस दीपक को दोनों

हथेलियों में ढक लेते हैं, ताकि चारों तरफ से जो हवा चल रही है, वो उस लौ को बुझा न दे। इसी तरह ज्ञान के दीपक को जब माया की हवा बुझाने की कोशिश करती है, तो इस ज्ञान की संभाल करने के लिये सिमरन करना ऐसे है, जैसे अपने हाथों से ढक कर उसे बुझााने से बचा लिया हो।

हमें धन मिलता है तो धन की संभाल भी आवश्यक होती है। धन के जरिये हमारे कारज रास हो जाते हैं। देखने वाला कहता है कि उसके पास तो इतनी प्रोपर्टी है, इतनी उसके पास जायदाद है, धन है और इस धन के ही कारण उसके सारे परिवार की संभाल हो गई है। इसमें भी कोई शक नहीं कि वह धन भी सारे परिवार की संभाल कर रहा है। लेकिन उस धन को पहले परिवार वालों ने ही संभाला हुआ था, तभी तो वह उसकी संभाल कर रहा है। उसको फेंका नहीं और हाथ से जाने नहीं दिया, तो उनकी संभाल हो रही है। यदि कोई नदी में डूब रहा इन्सान नदी में बह रहे लकड़ी के शहतीर को थाम लेता है तो देखने वाला कहता है, कि देखो जी, इस शहतीर ने इसे संभाल लिया है, वरना तो इसको डूब जाना था। लेकिन शहतीर ने तो उसे तभी संभाला है, जब वह खुद उस शहतीर को थामे हुये है। पहले उसने संभाल की है, तो उसकी भी संभाल हो गई है। इसी तरह यह निराकार परमात्मा रूपी दात, जो विरलों को प्राप्त होती है, जिसका कोई मोल नहीं, जो जन्मों–जन्मों की भटकन के बाद प्राप्त होती है, ऐसा नाम रूपी हीरा जब इस झोली में पड़ जाता है, तो जो इसकी संभाल कर लेता है, वो वास्तव में आनन्दित रहता है, हमेशा सुखी रहता है। उसके नज़दीक कोई तृष्णा नहीं आती। अभिमान, दुख या कोई बुरी भावना, उसके मन में प्रवेश नहीं करती।

इसकी संभाल का जरिया भी बताया है, वह जरिया यही है, जो आप संत नित्य प्रति करते हैं। साधसंगत करते हैं, सेवा करते हैं और सिमरन करते हैं। लेकिन ये तीनों कार्य निष्काम भावना से जब करते हैं, जो इस हीरे की संभाल हो जाती है। यह कभी हाथों से नहीं जाता।

इसमें कोई शक नहीं कि इस निरंकार, दातार, प्रभु परमात्मा का ज्ञान सद्गुरु से प्राप्त हो जाता है, लेकिन फिर भी इसको हम आंखों से ओझल कर देते हैं। इस तरह का समय कई दफा जीवन में आता है। हर एक गुरमुख महापुरुष का नाता इस निरंकार प्रभु हरि के साथ जुड़ा रहेगा, तो भक्त हमेशा गुणवान होते रहेंगे। इस प्रकार के सुख दातार प्रदान करता रहेगा।

इस ज्ञान की संभाल तभी है जब हम इस ज्ञान को बीज रूप मानें। धरती में हम जब बीज डाल देते हैं तो बाद में उसको खाद पानी इत्यादि प्रदान करते हैं। तभी वह बड़ा वृक्ष बनता है। उसमें फल लगते हैं। वही हमें छाया देने लग जाता है। वह इतना मजबूत हो जाता है कि बड़े से बड़े हाथी को भी हम उसके साथ बांध दें, तो वह टस से मस नहीं होता। ज्ञान की दृढ़ता भी तब होती है, जब इस निराकार को अपने अंग–संग जानकर, हृदय में बसाकर, हर एक में इसका दर्शन करके हर एक का सत्कार करते हैं और दातार की दी हुई दातों का सद्मार्ग में इस्तेमाल करते हैं। हाथों से सेवा करते हैं, जुबार से इसका यश करते हैं, मीठे बोल बोलते हैं और जो दातार ने धन दिया है, उस धन को भी अर्पित भाव से इस्तेमाल करते हैं कि –

कबीर मेरा मुझ महि किछु नहीं जो किछु है सो तेरा।
तेरा तुझ कउ सउपते किया लागै मेरा।।

निराकार परमात्मा के साथ जिसका नाता जुड़ जाता है, उसकी आँखें संसार का दृश्य तो देखती हैं, लेकिन निश्चय इस एक के ऊपर ही होता है। मन को इसी निशाने पर लगाना है। द्रोणाचार्य ने एक काठ की चिड़िया पेड़ पर रखी थी, कि इस पर निशाना लगाना है। इससे शिष्य से पूछा जाता है कि वह क्या देख रहा है, क्या नज़र आ रहा है। वह कहता है, आसमान नज़र आ रहा है, पेड़ नज़र आ रहे हैं, पहाड़ नज़र आ रहे हैं। पेड़ पर उसकी डालियां हैं, ऊपर चिड़िया बैठी है। यह कहकर निशाना लगाता है, तो चूक जाता है। दूसरे से पूछा जाता है कि उसे क्या नजर आ रहा है। वह भी कहता है कि मुझे पेड़, पत्ते, डालियां और चिड़िया नज़र आ रही है। उसका भी निशाना चूक जाता है। तीसरे से पूछा जाता है कि क्या नज़र आ रहा है? वह कहता है कि मुझे डाल के ऊपर चिड़िया नज़र आ रही है। वह भी चूक गया। चौथे (अर्जुन) की बारी आई। उससे पूछा गया कि आपको क्या नज़र आ रहा है? कहने लगा कि मुझे चिड़िया की सिर्फ आंख नज़र आ रही है। नतीजा यह हुआ कि वह निशाना सीधा आँख पर जाकर लगा। कहने का भाव यह नहीं कि जो दृश्य बाकी के लोगों ने बयान किया, उसकी आँखें वह दृश्य नहीं देख रही थीं, या उसने कोई ऐसा चश्मा चढ़ा रखा था, जिसके बड़े शीशे थे या लैन्स थे, जिसके कारण उसका स्वरूप बढ़ गया कि बाकी कुछ नज़र आना बन्द हो गया और केवल आँख नज़र आ रही थी। ऐसा नहीं था। चारों की आँख

वही कुछ देख रही थीं, एक जैसा ही देख रही थीं, लेकिन जिसने आँख के ऊपर मन एकाग्र किया, वही वास्तव में कहता है कि मुझे आँख ही नज़र आ रही है। उसी ने कामयाबी प्राप्त की, वह लक्ष्य प्राप्त किया। इसी तरह गुरुमुख महापुरुष, सन्त जो होते हैं, वह भी इस एक निराकार परमात्मा दातार के ऊपर ही निर्भर होते हैं। इसी की तरफ ध्यान रखते हैं। इसी का आसरा लेते हैं और संसार को मिथ्या जानकर निर्लेप रहते हैं। अवतार बाणी में कहा है कि –

''गुरसिखों को राम मिला है उसको सदा संभालण ओ।''

साध संगत! गुरमुख महापुरुषों के दर्शन बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं। महापुरुषों के मिलाप, महापुरुषों की संगति हमारे जीवन को ऊँचा किया करती है, जो गुरमुख महापुरुषों के मिलाप की चाहना अपने मन में रखते हैं, उनकी संगति करते हैं, उनके ज्ञान की संभाल सरलता से हो जाती है। तभी तो कहा गया है कि –

सेई मिलाई, जिन्ना मिलयां तेरा नाम चित्त आवे।

अर्थात् हे दातार! ऐसे भक्तों, महापुरुषों से मिलाप करा, जिनके मिलाप से और किसी चीज़ का नहीं, बल्कि तेरा ही ध्यान आता है। जिस तरह से हम बाज़ार में जा रहे हैं, तो सामने कोई महापुरुष आता दिखाई देता है। जैसे ही वह हमारे सामने आता है, हमारा और किसी चीज़ की तरफ ध्यान नहीं जाता कि उसके इतने मकान हैं, इतनी कोठियां हैं, इतनी उसकी रिश्तेदारियां हैं, बल्कि उसको देखते ही पहले जो ध्यान आयेगा, वह यही है कि यह देखा हुआ महापुरुष आ रहा है। हम एकदम उस महापुरुष को देखते हैं, तो इस निराकार का ध्यान आ जाता है। अभी वह हम तक पहुँचता नहीं, हम मुंह से कुछ नहीं करते, परन्तु मन से पहले ही 'धन निरंकार' कहना शुरू कर देते हैं। इसीलिये महापुरुषों ने, सन्तों ने हमेशा साधसंगत की विशेषता बताई है कि साध संगत के बगैर पार–उतारा नहीं। भक्ति की रंगत भी तभी चढ़ती है। ब्रह्मज्ञान भी तभी फलता–फूलता है, जब साधसंगत की जाती है, जब सेवा की जाती है, जब सिमरन किया जाता है। जिस तरह से हम अपने घरों के आंगन में कुछ पौधे लगाते हैं। हम पौधे लगाने तक ही सीमित नहीं रहते। हम उनको पानी भी देते हैं, खाद भी देते हैं। हम उनके चारों तरफ बाड़ भी लगाते हैं ताकि कोई पशु उनका नुकसान न कर सके। इसी तरह से इस ज्ञान

रूपी पौधे को भी सही मायनों में अगर हम बड़ा बनाना चाहते हैं तो हमेशा गुरमुख महापुरुषों की संगति ही हमें ऐसी अवस्था प्रदान कर सकती है, क्योंकि –

बिनु सत्संग विवेक न होई।

जिस तरह से चन्दन के पेड़ के पास जो और पेड़–पौधे, बूटे उग जाते हैं, उनके अन्दर भी चन्दन की खुशबू वास कर जाती है, इसी तरह से जो मन से निमाणा बन के, जो सीखने की भावना से महापुरुषों की संगति कर लेता है, उसमें भी वो गुरमुख वाले गुण प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन जो अभिमानी होता है, कठोर होता है, अहंकारी होता है, अपने आपको पूर्ण माने बैठा होता है, उस पर प्रभाव नहीं पड़ता। जितनी वनस्पति है, उसमें तो चन्दन की खुशबू प्रवेश कर जाती है, लेकिन बांस कठोर होता है, इसलिये उसमें चन्दन की खुशबू प्रवेश नहीं कर पाती है। इसी तरह जो भी अहंकारी होता है, अपनी विद्या का घमण्ड जिसने किया है, अपनी लियाकत का मान किया है, जिसने धन–दौलत का अभिमान किया है, अपने शरीर की ताकत का अभिमान किया है, ऐसे अभिमानी इन्सान में सद्गुण कभी प्रवेश नहीं किया करते।

साध संगत, कामधेनु हुआ करती है, ये अपना फल दिये जाती है। लेकिन ज़रूरत होती है निमाणा बनने की। जैसे एक सज्जन थे। उन्होंने किसी को पानी भरने के लिये नल पर भेजा। काफी इंतज़ार की गई तो वो बहुत व्याकुल हो उठे और सोचने लगे, देरी क्यों हो गई? नल तो थोड़ी दूर पर है। क्या बात हो गई है? उसे देखने चले गए। आ कर देखते हैं कि नल का पानी तो जोरों से बह रहा है, लेकिन बर्तन जो नल के नीचे रखा था, वो उल्टा रखा हुआ है। जब वह समझे कि क्यों देरी लग रही है। उन्होंने उसको समझा दिया कि भले मानस बर्तन सीधा कर लो। इतना कह कर वह वापस आ गये। लेकिन फिर देरी लगने लगी। सोचने लगे, क्या बात है, अभी तो उसे समझा कर आया हूँ। इतनी देर नहीं लगनी चाहिये। फिर देखने चले गये और क्या देखा कि बर्तन तो सीधा पड़ा है, लेकिन उसके ऊपर से ढक्कन नहीं उतारा था। इसी प्रकार अभिमान का ढक्कन हटाने पर ही हृदय में यह ज्ञान का अमृत भरता है और सुरक्षित भी रहता है।

निराकार दातार परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके जिसने इसकी संभाल की है, यानि इसको कभी मन में से बिसारा नहीं, इसको हमेशा हृदय में बसा कर

रखा है, तो ऐसे भक्त की अपनी संभाल भी हुई रहती है। उसको सहज अवस्था मिली रहती है। उसको एकाग्रता मिली रहती है। चाहे जीवन में कैसा भी समय आ जाये, वह सहज अवस्था में रहता है। जब साधसंगत मिलती है, गुरमुखों का संग मिलता है, तब इसकी संभाल के बारे में भी हमारा ध्यान चला जाता है। अगर साधसंगत से दूर हो जाते हैं या अगर मनमुखों की संगति मिलती है, तो इसका ध्यान नहीं आता, इससे दूर चले जाते हैं। इससे परे हट जाते हैं। नतीजा, कि हमेशा इस मन में बेचैनी बनी रहती है।

निराकार परमात्मा का ध्यान करते रहने से चिंतायें नहीं रहतीं। आज संसार में हमें यही देखने को मिल रहा है। इन्सान को चिंता लगी हुई है। लेकिन भक्त की अवस्था क्या है –

चिन्ता तो सतनाम की, और न चितवे दास।
जो किछ चितवे नाम बिन, सेई काल की फांस।

इस नाम के अलावा, इस हरि के अलावा भक्तों महापुरुषों की और कोई चिन्ता नहीं हुआ करती है। ये हरि नाम का ही चिन्तन करते हैं। इस मालिक की ही याद करते हैं। दुनिया में जैसे कृपण इन्सान को धन की चिन्ता होती है, कि धन कहीं खो न जाये, कोई धन उठा के न ले जाये, इसी प्रकार महापुरुष भी नाम रूपी धन की चिन्ता करते हैं, कि ये नाम धन मेरे हाथ से न चला जाये। कहीं मैं इसको विसार न दूँ, कहीं मैं इसको भुला न दूँ। वैसे तो चिन्ता का कोई अन्त नहीं। चिन्ता के बारे में और भी कहा गया है कि जो चिता होती है, वो तो मुर्दे को जलाती है, लेकिन चिंता जीते को जलाती है। ऐसी चिन्ता से इन्सान का छुटकारा तभी होता है जब वह प्रभु परमात्मा को विसारता नहीं, भुलाता नहीं और सदैव इस निरंकार के ज्ञान की संभाल करता रहता है।

प्रभु–परमात्मा को सदैव याद रखने का साधन सत्संग है। साध संगत का ही प्रभाव होता है कि हमारे मन में एकाग्रता रहती है। इस प्रभु के हमारे मन का विश्वास हमेशा बना रहता है। इस दातार के ऊपर हमारा अकीदा कायम रहता है।

अगर साध संगत प्राप्त नहीं होती, तो इस संसार में हमारा बर्ताव उसी तरह ही होता है, जिस तरह किसी सज्जन ने शीशे का एक कमरा बनवाया। उसने ऐलान किया कि सभी अपने–अपने कुत्ते लायें और जो इस कमरे से सही सलामत अपना कुत्ता बाहर ले आयेगा, उसको बहुत इनाम दिया जायेगा। बारी–बारी से लोग इस शीशे के कमरे में अपना कुत्ता लाते गये, लेकिन थोड़ी देर बाद ही इस कुत्ते को लहुलुहान हालत में घसीटकर बाहर लाना पड़ता था।

अनेक कुत्ते दिन भर उस कमरे में दाखिल होते और ज़ख्मी हो जाते, तो उन्हें बाहर लाया जाता। लेकिन एक कुत्ता काफी देर उस कमरे में रहा और सही सलामत अपने आप चल कर बाहर आ गया। उसे ही निर्धारित इनाम मिला। इनाम देते समय कुत्ते के मालिक से पूछा गया कि आपको इनाम तो हम दे रहे हैं, लेकिन आप बताइये कि क्या कारण है, जो दूसरे कुत्ते तो भौंकते–भौंकते ज़ख्मी होकर बाहर आये और केवल आपका कुत्ता ही सही सलामत आ गया। वह बोला कि जैसे आपने शीशे का कमरा बनवाया है, ऐसा ही कमरा मैंने भी अपने घर पर बनवाया हुआ है। मैं अपने इस कुत्ते को प्रतिदिन उस कमरे में अन्दर ले कर जाता था, दिन में कई बार लेकर जाता था, जिससे अब यह शीशे में अपनी शक्ल देख कर भयभीत नहीं होता। दूसरे कुत्ते अपनी शक्लें शीशे में देखकर भयभीत होते थे, और उन शक्लों पर झपटते थे, जिससे वह लहुलुहान हो गये।

कहने का भाव, कि यह मन भी कुत्ते की तरह है। इस तरह से इस मन को जब वास्तविकता की पहचान हो जाती है, उसे समझ आ जाती है कि कोई बेगाना नहीं, तो फिर इन्सान की ऐसी अवस्था हो जाती है, कि वह प्रत्येक को गले लगाने लगता है, जिससे खुद भी सुखी रहता है तथा औरों को भी सुख देता है। बार–बार संगत करने से इसका ध्यान भी परमात्मा की तरफ ही लगा रहता है। इसलिये तो सब अपने ही लगते हैं।

अगर किसी के पास सोना या सोने के ज़ेवर या हीरा है, तो उन्हें वह यूं ही कहीं आँगन में नहीं रख देगा। वैसे ही कहीं पशु बांधने के स्थान पर नहीं रख देगा। वह उसकी कीमत जानता है, इसलिये उसको उचित स्थान देगा। उसको बहुत संभालकर, बहुत हिफाज़त से रखेगा। इसी तरह से इन्सानी जीवन भी हीरे जैसा अमोलक जीवन है। अगर इसकी सही कीमत न डाली गई, इसको सही निगाह से न देखा गया, ऊँचा दर्जा अगर न दिया गया, इसको

और ही विषय–विकारों में व्यतीत करके चले गये, इसको लालसाओं में लिप्त होकर ही व्यतीत करते गये, इसे वैर–ईर्ष्या–नफरत की भावना अपनाकर व्यतीत करते चले गये तो फिर ये कौड़ियों जैसा ही हो जायेगा। इससे ज़्यादा इसका कोई मोल पड़ने वाला नहीं। जीवन की संभाल तभी है, जब वह प्रभु परमात्मा के ध्यान में लगे। इसका ध्यान करता हुआ ही सब कार्य करे।

साध संगत! यही आवाज़ हमेशा सन्तों–महापुरुषों ने दी है कि हे इन्सान! इस साध संगत के साथ जुड़ जा। इसके साथ जुड़ने से ही तेरे जीवन में रंगत आ सकती है, इस नाम का रंग चढ़ सकता है और इस ज्ञान की कीमत भी तू जान सकता है। जिस तरह से और भी दुनियावी चीज़ों की संभाल की जाती है, उनकी कीमत के अनुसार ही हम उनकी संभाल करते हैं। जो कम कीमती वस्तु होती हैं, उसको कमरों में रखते हैं। जो ज़्यादा कीमती चीज़ है, तो कमरे में रखी हुई अलमारियों में रखते हैं, और भी कीमती हो, तो अलमारियों के अन्दर ऐसे खाने बना रखे होते हैं कि आम इन्सान उसे देख भी न पाये। इतनी–इतनी संभाल, इतना इतना दर्जा हम देते जाते हैं। इस ज्ञान की कीमत का अगर हमें एहसास न होगा तो फिर वास्तव में हीरा प्राप्त होते हुये भी कंगाल होने की बात हो जाती है –

भीख भूखा कोई नहि, सब की गठरी लाल।
आंख खोल देखत नहि, याते भए कंगाल।।

साध संगत! इस ज्ञान की संभाल, जिस–जिस ने भी की है, आनन्द प्राप्त किया है। इस ज्ञान की संभाल साधसंगत के द्वारा होती है, सुमिरन के द्वारा होती है और सेवा के द्वारा होती है –

कबीर कउड़ी कउड़ी जोरि के जोरे लाख करोरि।
चलती बार न कछु मिलिओ लई लंगोटी तोरि।।

हे इंसान! तेरे तन पर अगर एक लंगोटी मात्र ही है, तो यह भी साथ नहीं जाने वाली। तू जिनके लिये तमाम जीवन लगा रहा है, ये तेरे किस काम आ रहे हैं, ये श्वास किस को समर्पित कर रहा है? इन श्वासों का तू क्या मोल डाल रहा है? तू इस प्रभु के साथ अपना नाता जोड़ ले, तभी यह तेरा लोक भी सुखी हो सकेगा और परलोक भी सुहेला हो जायेगा।

अगर कोई अपने आप को बड़ा मानकर अपनी चतुराइयां, हील–हुज्जतें अपना लेता है, तो उसके ऊपर जो निखार आना है, वह नहीं आ पाता है। साध संगत्! यही दातार के आगे अरदास है कि दातार मेहर करें, गुरमुख–महापुरुषों को जो यह उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है, इस ज्ञान को संभाल कर रखे। संसार में जो वैर, ईर्ष्या, नफरत, घृणा की भावना है, इनसे गुरुमुख हमेशा ऊपर हुआ करता है। अगर यह मन साधसंगत से जुड़ा रहता है, उपदेश से जुड़ा रहता है, तो फिर वह ऐसी छोटी भावनाओं से दूर रहता है। लेकिन अगर उसकी सोच सांसारिक बन जाती है, सांसारिक स्वभाव सामने आ जाते हैं, फिर तो ऐसी अवस्था है, जैसे महापुरुषों ने कहा है,

चंदन लेपु उतारै धोई
गरधब प्रीति भसम संगि होई।।

जिस तरह से एक गधे के ऊपर हम चन्दन का लेप कर दें। हालांकि वो चंदन सुगन्धि देने वाला, शरीर को शीतल करने वाला है, लेकिन गधे की फितरत ही यह है कि वह जमीन पर उलटा सीधा लेटता है, और चन्दन को उतार देता है, क्योंकि उसे उस चन्दन की कीमत का पता नहीं। इस तरह से ये ब्रह्मज्ञान बहुत अमोलक ज्ञान है। इसको जो अपना के रखता है, वह इससे लाभ भी लेता है और उसकी भी कीमत बनी रहती है। उसका ही संसार में यश होता है। हरेक के मन में उसका सत्कार होता है। लेकिन वह इसको ही उतार फेंकता है। जिस तरह एक हाथी पानी में नहाता है। पानी में नहाया हुआ हाथी अपनी सूण्ड से मिट्टी उठा कर फिर अपने शरीर पर फेंक लेता है। इसी तरह से अगर इस ज्ञान, इस अमोलक दात की संभाल नहीं करते, तब हमारे जीवन में गिरावट आती जाती है। हम इसकी संभाल किये रखेंगे, इसको अपना लेंगे, तो कभी भी हमारे मन में नीच–संकीर्ण भावनायें नहीं आयेंगी। हम सहन करना सीखेंगे। हम अपनी बात दूसरे के ऊपर थोपना नहीं सीखेंगे। हम दूसरे को समझने की कोशिश करेंगे। आज शरीरों से पहचान नहीं होती कि ये निरंकारी है, या नहीं है। हमारी सोच और फितरत यदि सांसारिक ही बनी रहे, हम एक–दूसरे को कड़वा बोलते रहें, एक दूसरे के ह्रदय को दुखाते रहें, तो हम केवल शरीर के ही निरंकारी बन सकेंगे। निरंकारी हम तभी बन सकते हैं, अगर हमारी अवस्था हमारा जो गुण है, वो हमें निरंकारी बनाये, हमारी श्रद्धा भावना हमें निरंकारी बनाये। एक–दूसरे का सत्कार, एक दूसरे को सहना करना, यही वास्तव में निरंकारी की पहचान है। आज इसी पहचान की

ज़रूरत है। एक ऐसे कर्म की, ऐसी पहचान की ज़रूरत है, एक विशाल हृदय की ज़रूरत है। हम विशाल बने रहें और एक दूसरे को समझने की कोशिश करें, एक दूसरे की तरफ ध्यान दें और फिर अपने मार्ग पर चलते जायें।

सत्संग

महापुरुष अपने जीवन में हर पल साधसंगत को महत्ता देते हैं। कोई भी मौका हो, आपके लिये सबसे पहले साध–संगत का सहारा ही है, साध–संगत का मिलाप ही है जो जीवन की नैया को डोलने से बचाता है। निरन्तर गुरुमुख महापुरुष इस साध संगत की अपने मन में कदर बना कर रखते हैं। कदर वही जान सकता है, जिसको इस चीज़ की कीमत का पता हो। जिसको कीमत का पता नहीं, वह कदर भी नहीं कर सकता। आप महापुरुषों को यह कद्र है, इसलिये आप इसकी कीमत भी जानते हैं, कीमत डालते हैं। इसलिये कहीं पर भी साधसंगत हो, आप भाग–भाग कर उसमें अपना पूर्ण योगदान देते हैं। यही सन्तों का कर्म हुआ करता है।

कुछ लोग कहते हैं कि अब ज्ञान तो हो ही गया है, रोज–रोज सत्संग की क्या ज़रूरत है? लेकिन वे ऐसा क्यों नहीं सोचते कि दो दिन पहले तो मैं नहाया ही था, आज मुझे क्यों नहाना है? जीवन में जितने भी सुख साधन, जितनी भी स्वच्छता है, उसके लिये हम कभी किसी को नहीं कहते कि अभी तो किया है, थोड़े दिनों के बाद कर लूंगा। हम जानते हैं कि भोजन अगर नहीं किया तो यह तन निर्बल होना शुरू हो जायेगा, कमज़ोर पड़ जायेगा। अगर हम नहीं नहाते, तो शरीर से बदबू आना शुरू हो जायेगी, इस गन्दगी के कारण शरीर को रोग लग सकता है।

इसी तरह मन को अगर निर्बल करना है, तो साधसंगत का सहारा, गुरुमुख–महापुरुष का सहारा लेना पड़ता है। सन्तों की संगति प्राप्त करके ही मन निर्मल होता है और एक सहज अवस्था भी प्राप्त हो जाती है।

साधसंगत की महत्ता तभी है, जब मन से विनम्र बनके संगत की जाती है। ऐसी भावना से साधसंगत करके ही हमें गुण प्राप्त होते हैं, विश्वास प्राप्त

होता है। अगर कहीं पर भी हम अभिमानी हो जायें, हम अपने आप को सम्पूर्ण मान बैठें, तो सीखने की भावना समाप्त हो जाती है। जहाँ पर यह मान लिया कि मैं तो पूर्ण हो गया हूँ, वहाँ पर रुकावट आ जाती है, आगे बढ़ने के अवसर खत्म हो जाते हैं और उसके बाद इन्सान का पतन शुरू हो जाता है।

संगत के बिना कभी इस मन को विवेक नहीं मिल सकता। यह विवेक–बुद्धि बन नहीं सकती है, यह मन इस प्रभु के साथ जुड़ नहीं सकता है। यह हमेशा डोलायेमान रहेगा और संसार की तरफ भाग खड़ा होगा। इस मन को इस आधार के साथ जब मनुष्य जोड़ देता है, तो हमेशा उसके जीवन में एक सहज अवस्था बनी रहती है। उसका एक सरल जीवन बना रहता है। वह उस केन्द्र (परमात्मा) पर अपना निश्चय पूरा करके हमेशा आगे से आगे बढ़ता जाता है। कहने का भाव यही है कि महापुरुषों की संगत ही यह रंगत लाया करती है। यही हमारे जीवन को ऊँचा बनाने वाली होती है। यही हमारे मन को इस सत्य की तरफ जोड़ती है और मिथ्या से दूर ले जाती है। ऐसी संगत जिसको भी प्राप्त हो जाती है, उसके जीवन में निखार आ जाता है। उसके जीवन में सहज अवस्था स्वाभावित रूप से प्रवेश कर जाती है। जिसके जीवन में यह प्रवेश कर जाती है, हमेशा उसका मुख उजला रहता है। वह खुद भी हमेशा सुख प्राप्त करता है, आनन्द लेता है तथा औरों को भी वो सुख देने वाला होता है। इस निराकार, इस दातार की महिमा गाता है और उठते–बैठते इसको मन में बसाता है।

किसी ने कबीर जी से भी पूछ लिया था कि हम क्यों रोज़ साधसंगत करें? क्यों हम रोज़ जाकर महापुरुषों का संग करें? क्या ज़रूरत है? एक दफा हम परमात्मा का नाम ले ही लेते हैं। हमें और भी कई काम होते हैं, तो ये रोज़ाना संगत की क्या बात है? हम क्यों बार–बार संगत में जाकर बैठें और वहाँ सुनें। वहाँ एक कीला गड़ा हुआ था। कबीर जी ने उस पर हथोड़ी लगा दी। अगले दिन वो सज्जन फिर गया। कहने लगा, मैंने इस सवाल का जवाब पूछा था, परन्तु आपने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। कबीर जी ने कीले के ऊपर फिर हथोड़ी लगा दी। फिर भी जवाब नहीं दिया। वो सज्जन तीसरे दिन आया। कहने लगा आप अजीब बात कर रहे हैं। मैं आपसे कितनी विनती कर रहा हूँ, आप मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते? फिर कबीर जी ने कहा मैं तो रोजाना जवाब दे रहा हूँ। लेकिन तुम समझ

नहीं रहे। मैं इस कीले के ऊपर रोज एक हथौड़ा लगाता था, वो इसलिये कि यह कीला ज़मीन में दबा रहे। अगर मैं इस पर हथौड़ा नहीं लगाऊँगा, तो ज़मीन में थोड़ी सी हलचल होने से कीला ढीला पड़ जायेगा और किसी के पांव से टकराने से, या किसी पशु के कारण यह कीला ज़मीन से बाहर आ जायेगा। एक दफा बाहर आ गया तो पता नहीं उसका कहाँ पर निवास होगा और कहाँ फेंक दिया जायेगा। यह जो रोज़ाना इसके ऊपर एक ठोकर लगाता हूँ वह इसलिये कि यह जमीन में मज़बूती से दबा रहे, हिले नहीं। इसी प्रकार हर रोज़ की गई संगत हमारे मन को दृढ़ बनाये रखने के लिये ज़रूरी है।

साधसंगत में जाकर महापुरुषों के वचनों से एक मजबूती हमारे मन में आती है। हमें एक सहारा मिलता है, तो हमारा मन भी इस निराकार इस परमात्मा में गड़ा रहता है। इस निराकार परमात्मा के अन्दर इस मन का विलीन हो जाना, उसके ऊपर आस्था व विश्वास कायम हो जाना, यही हमें दुनियावी सोच-विचार से ऊपर उठाकर ब्रह्म भावना हमारे अन्दर भर देता है। दुनियावी सोचों से ऊपर होते हैं तो मन में शान्ति होती है और मन को हमेशा सुकून मिलता है। अगर दुनियावी सोच बनी रहेगी, तो हम जानते हैं कि दुनिया का पदार्थों के लिहाज़ से लालच तो कभी समाप्त नहीं हो सकता। महात्माओं ने, सन्त महापुरुषों ने कहा है कि –

आग लगी आकाश में झड़ झड़ गिरे अंगार।
सन्त न होते जगत में तो जल मरता संसार।

जंगल में आग लगी होती है और वह बढ़ती जाती है, बढ़ती ही जाती है। आपने पढ़ा होगा कि पिछले वर्षों ऑस्ट्रेलिया में कम से कम एक महीना आग जंगलों में लगी रही। उसके बाद एक बरस कनाडा में भी ऐसी ही आग सुनने को मिली। एक बरस चीन में सैंकड़ों हजारों मील तक जंगल के जंगत आग से जलते रहे। कितनी तबाहियाँ हो रही हैं, लेकिन आग बढ़ती ही जाती है लेकिन जहाँ पर भी कोई झील या तालाब पानी से भरा हुआ आ गया है, उससे आगे आग नहीं जा सकती। आग वहीं किनारे पर रुक जाया करती है। इसी तरह से चारों तरफ इन्सान एक-दूसरे से टकराता है, एक दूसरे से वैर की ज्वाला पैदा करता है, लेकिन कहीं भी बीच में सन्त महापुरुष आ जाते हैं, तो जल का कार्य करते हैं और उस अग्नि को वहीं पर रोकने का यत्न करते हैं।

एक बार एक सन्त ने दूसरे महापुरुष से पूछा कि काफी दिनों से संगतें कर रहा हूँ, लेकिन मुझ में तो गुण नहीं आये। उस सन्त महापुरुष ने एक बांस की टोकरी उस व्यक्ति को थमा दी और बोला, इसमें पानी भर लाओ। वह उस टोकरी को नदी में डाले और जब निकाले तो पानी उसमें टिके ही नहीं। अगले दिन व्यक्ति फिर गया और सन्त ने पूछा कि उसमें पानी कैसे भरे, उसमें तो अनेक छेद हैं। सन्त बोला कि तेरी भी यही हालत है। तू भी नित्य साध संगत करता है, लेकिन तेरे में ये गुण नहीं आ पा रहे हैं। जैसे तुमने ये खुद ही सिद्ध करके बता दिया कि इस टोकरी में भी पानी नहीं भर रहा है। निरन्तर पानी में इसे डालता हूँ और पानी से बाहर निकालता हूँ, लेकिन पानी नहीं भर रहा है। तू इतने दिनों से जाकर टोकरी पानी में डालता है, निकालता है, तुझे कोई फर्क नजर नहीं आया? व्यक्ति बोला, एक फर्क मुझे अवश्य नजर आया है। पहले उस टोकरी के साथ मिट्टी जमी होती थी, अब कम से कम ये टोकरी बिल्कुल साफ दिखाई देती है। इसके ऊपर कोई गन्दगी नहीं दिखाई देती। इतनी उज्जवल यह टोकरी हो गई है। सन्त ने समझाया कि अगर इसी तरह से पानी में निरन्तर डालते जाओगे, तो यह बांस एक दिन फूल जायेंगे। फूल कर यह जो अन्तर (गैप) है, ये जो छेद है, ये भी भर आयेंगे, और टोकरी में पानी भर जायेगा। पानी टिक जायेगा।

साध संगत! इसी तरह से जो निरन्तर साधसंगत करते हैं, उनके जीवन में भी ऐसा निखार आता है और वे भी गुणी बन जाते हैं। इसे अगर कोई फिजूल की बात मान लेता है, तो वह वास्तव में अपने आप के साथ ही धोखा कर करके अपना ही नुकसान कर रहा होता है।

कोई इंसान कितना ही बुरे से बुरे काम करने वाला हो, लेकिन अगर संगत में आकर प्रभु-चर्चा ध्यान से सुनेगा, तो उसका जीवन अवश्य बदल जायेगा। अगर संगत में आकर भी कोई इन्सान महापुरुषों के वचनों को सुना-अनसुना कर देता है, तो उसको कोई प्राप्ति नहीं हो पाती। उसके मन की मैल उसी तरह बनी रहती है। जो महापुरुषों की आवाज़ को सुनकर उसे धारण कर लेते हैं, वो अपने इस जीवन को सफल बना लेते हैं।

संगत के साथ जुड़ने से मन को बल प्राप्त होता है। मन विश्वासी बनता है और निर्मल हो जाता है। साधसंगत जिसको भी प्राप्त होती है उसको

बड़े ही भागों वाला गिना जाता है। संत तो संगत करने का कर्त्ता भी अपने आप को नहीं मानता और यही कहता है कि –

'तुम्हारी कृपा से भए साधसंग, ऐहो काज तुम आप कियो।'

कि तेरी कृपा से सन्तों महापुरुषों का संग मिला है। यह कारज तो तूने आप ही किया है, अगर ये भी मेरे पर छोड़ दिया होता तो मैं दुनिया में क्या–क्या करता हूँ, कहाँ–कहाँ जाता हूँ, यह भली–भाँति आप जानते हैं, क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं।

साधसंगत, प्रभु कृपा से प्राप्त होती है और अगर इसको हम कृपा मान लेते हैं तो जिन पर कृपा होगी, उनको अगर धन्य नहीं कहा जायेगा, तो क्या कहा जायेगा? जितने भी सन्त महापुरुष इस संसार में समय–समय पर आये, उनके जीवन भी यही प्रकट करते हैं कि –

'अपनी करनी ते नरक भी न पाऊँ ठौर।'

महापुरुष हमेशा ही कामना करते हैं कि सन्तों से ही हमारा सम्पर्क बढ़े। महापुरुषों से ही हमारा नाता जुड़े और गुरमुखों से मिलाप हो। कहा भी है कि –

'गंगा के संग सलिता बिगरी, सो सलिता गंगा होई निबरी।
बिगरियो कबीरा राम दुहाई, साचु भइओ अन कलाहि न जाई।'

साध संगत! कहने का भाव यह है कि जिस तरह से चन्दन के पास उगी हुई वनस्पति में भी चन्दन की खुशबू आ जाती है। एक गंदा नाला जो बह रहा है, वह विशाल गंगा की शरण लेता है, तो उसी का रूप हो जाता है। एक लोहा पारस को छू जाता है, और फिर वह कंचन बन जाता है। इसी तरह से सन्तों की अवस्था को कबीर जी बता रहे हैं कि महापुरुषों की संगति करके कबीर जी राम का रूप ही हो गये हैं।

जिस तरह से कोई इन्सान पानी में उतर जाता है, तालाब में उतर जाता है, तो फिर सूरज की गर्मी का असर उस पर नहीं रहता और वह ठंडक महसूस करता है, शीतलता महसूस करता है, इसी तरह से जो इस नाम के

रंग में डूब जाते हैं, संगत में आते रहते हैं, उनके ऊपर माया की गर्मी भी असर नहीं करती।

साधसंगत! जो निरन्तर, सत्संग में अपने आप को अर्पित किये रहते हैं, वास्तव में उनके जीवन में निखार आता है। उनके मन का विकास होता है, और मन हमेशा ऊँचाइयों की तरफ बढ़ता है क्योंकि उसमें अच्छे गुण भरे जा रहे होते हैं और ऐसा होता है मात्र महापुरुषों की संगति के कारण, महापुरुषों के साथ के कारण। इसीलिये वे अरदास करते रहते हैं कि –

सेई मिलाई जिन्ना मिल्यां तेरा नाम चित आवे।

हे दातार! गुरुमुख महापुरुषों से ही मिलाप करा, जिनके मिलाप से तेरा ध्यान आ जाता है। तेरी याद बन जाती है, तेरे ऊपर पूर्ण विश्वास कायम हो जाता है।

महापुरुषों की संगति से दुई का भाव दूर हो जाता है, संकीर्णता दूर हो जाती है, हर हाल में निराकार के ऊपर पूर्ण विश्वास कायम हो जाता है और अपने अभिमान का त्याग हो जाता है। जैसा कहा है कि –

तिआगें मन की मतड़ी बिसारें दूजा भाउ जीउ।।

कि ये इस मन की मतड़ी को त्याग देते हैं, और दूजे भाव को हटा देते हैं। घृणा की भावना को आँखों से परे हटा देते हैं। यह सारा महापुरुषों की संगति का प्रभाव है। जितनी–जितनी यह संगति मिलती रहती है, उतना–उतना ही अडोल निरंकार के ऊपर विश्वास बढ़ता है।

साधसंगत! निर्मल जल जो हम पीते हैं, उस पानी को पीने से हमारी सेहत बनती है। लेकिन हम यदि कोई ऐसा पानी पी लें, जिसमें कुछ कीटाणु हों, जिसमें कुछ बीमारी फैलाने वाले विषाणु हों, तो उससे लिवर (जिगर) खराब हो जाता है, या 'जांडिस' (पीलिया) हो जाता है अथवा मलेरिया हो जाता है। कहने का भाव कि अगर महापुरुषों की संगति प्राप्त होती है, तो उनकी ऊँची भावनायें हमारे जीवन का अंग बन जाती है। लेकिन अगर हमारी संगति कहीं ऐसे मनमुख के साथ होती हैं, जो लालसाओं के ऊपर अपना जीवन निर्भर

करते हैं तो हम भी जीवन के हर एक पहलू में लालसाओं को शामिल कर लेते हैं। चाहे कोई समाज का कर्म हो, चाहे कोई धर्म का काम हो, सब में उन लालसाओं को पूरा करने के लिये ही इन्सान लोगों को भरमा देता है। उन्हें एक दूसरे से दूर कर देता है, एक दूसरे को बेगाना बना देता है। हालांकि एक ही प्रभु के बन्दे हैं, एक ही मालिक की सन्तान हैं, लेकिन ऐसी दूरियां पैदा हो जाती हैं जो सन्तों को शोभा नहीं देती और समाज का भी नुकसान करती हैं।

साध संगत ही एक ऐसा सरोवर है, जो आनन्द देने वाला है। इसमें हमेशा डूबे रहें, इसकी शीतलता हमेशा प्राप्त करते रहें। जब हम सरोवर में होते हैं तो भी सूरज तो वैसा ही होता है, सूरज तो तपश दे रहा है, गर्मी दे रहा है। सूरज अपना काम कर रहा है पर तालाब में हम नहा रहे होते हैं इसीलिये सूरज की गर्मी हम पर असर नहीं करती। इसी तरह जो नाम के सरोवर में डूबा रहता है, तो बाकी जो भी संसार के पदार्थ हैं, यह जो डोलायमान करने वाली माया है, लोभ–अभिमान जैसे विकार हैं, ये हमेशा कायम रहते हैं। यह हम पर असर नहीं करते। भाव इनसे तभी बच सकता है, अगर वह इस नाम के साथ मन को, ध्यान को जोड़े रखे। जैसे कहते हैं कि–

आठ पहर निकटि करि जानै।

राम की कृपा से इसे निकट जान भी लिया है, लेकिन जानकर इसका एहसास करना है, इसको मानना है कि –

चउगिरद हमारै रामकार दुखु लगै ना भाई।

चौगिर्द हमारे यह राम बसा हुआ है। इसका एहसास हमें बना हुआ है, तो फिर कभी मन में सन्ताप नहीं आता।

जितने भी महापुरुष, पीर–पैगम्बर इस संसार में आये हैं, उन्होंने सत्संग की महत्ता बताई है और कहा है कि इसके बिना इन्सान का पार उतारा नहीं। बुद्धि संसार की तरफ भागती है। इसको अगर यह नाम प्राप्त नहीं होता, इस हरि निराकार के साथ इसका नाता नहीं जुड़ता, तो इसमें कभी भी प्यार तथा दया की भावना नहीं आती।

सुमिरन

सन्त महापुरुष कहते हैं कि –

ज्यों तिरिया पीहर बसै, ध्यान रहे पिय माहिं।
तैसेई भगत जगत में, हरि को भूलत नाहिं।
सुमिरन की सुध यों करो ज्यों सुरभी सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरै बिसरत कबहूं नाहिं।

साधसंगत! इसलिये गुरमुख हर समय सिमरन करता है, मन से प्रभु का आठों पहर एहसास करता है और मन से ही झुकता है। यह नहीं कि हाथ तो दूसरे गुरसिख के पांव की तरफ आ रहे हों, लेकिन मन में सोच रहा हो कि यह मेरे सामने कहाँ से आ गया? ऐसी भावना कभी गुरमुख के हृदय में नहीं होती और न होनी चाहिये। तभी वह सुख पा सकता है और हर प्रकार से, संसार में आगे बढ़कर यश प्राप्त कर सकता है। अगर ऐसा नहीं करता तो बेड़ियां (माया) उसे खुद ही बांध लेती हैं, और वह कहीं बढ़ नहीं पाता। जब यह ज्ञान प्राप्त होता है, तो चारों तरफ यह कहने को मन करता है कि यह मुझ पर जो एहसान हुआ है, इससे ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे कोई कीमती 'लाल' हिस्से में आ गया हो। इसका बदला तो जन्मों–जन्मों तक भी नहीं चुकाया जा सकता। गुरु की यह अपार कृपा हुई है। लेकिन अगर एक तरफ तो हम कहें कि इस दातार का एहसान नहीं चुकाया जा सकता और दूसरी तरफ इस बात की हम कौड़ी कीमत भी न डालें। हमें मन में भी यही महसूस न हो कि चौगिर्द हमारे ये दातार है, तो समझो इसे जानकर भी हम अनजान बने हुये हैं। इस निराकार को अंग–संग जना दिया गया है, लेकिन फिर सांसारिक इन्सान की तरह, हम शायद इसे दूरियों पर मान रहे हैं, शायद किसी और की नज़रों के मोहताज हम बने हुये हैं। परख करने वाली निगाह कहीं सीमित हैं, शायद सत्संग–भवन में है, भवन के बाहर नहीं जहाँ पर हम रह रहे हैं, वहाँ कोई नहीं देख रहा। जहाँ व्यापार कर रहे हैं, शायद वहाँ नहीं देखा जा रहा। लेकिन प्रभु द्वारा सर्वत्र सब कुछ देखा जाता है।

सेवा भी तभी अच्छी होती है जब सिमरन भी साथ–साथ मन में चलता रहे। देखने वाला देखता है कि कड़कती धूप में सारा–सारा दिन मैदानों में ये

कहीं फावड़ा चला रहे हैं, कहीं तसले उठा रहे हैं, इनको कितना कष्ट हो रहा होगा, इनको कितनी दिक्कत हो रही होगी। लेकिन जो सेवा कर रहा होता है, उससे पूछो कि उसके मन में कितना आनन्द फूट रहा होता है। वह कितनी खुशी महसूस कर रहा होता है। इस तरह से धन करके भी जो सेवा में योगदान देता है, धन अर्पण करके भी कितना सुख और आनन्द महसूस कर रहा होता है, वह यही जानता है। सेवा के साथ–साथ सिमरन से ही यह आनन्द प्राप्त हुआ करता है।

साध संगत! जिस तरह से एक बिजली की तार लगी हुई है और एक बल्ब भी वहीं लगा हुआ है लेकिन उस तार का पीछे से कनैक्शन अगर नहीं लगा हुआ हो तो उस बल्ब तक रोशनी नहीं पहुँच सकती। इसी तरह से अगर इस मन के साथ ये लिव (सिमरन) नहीं जुड़ा, इस स्त्रोत के साथ नाता नहीं जुड़ा, केवल जीभ को ही लगा दिया, तो जैसे वो बल्ब तो लगा हुआ नज़र आ रहा है, इसी तरह से यह तो नज़र आ रहा है कि रसना इस प्रभु का नाम ले रही है, लेकिन पीछे से तार तो जुड़ी नहीं हुई, तो रोशनी इस मन में कहाँ पर आयेगी।

संगत से भी सिमरन करने का ध्यान बनता है। गुरमुखों महापुरुषों के संग का प्रताप ही है, जो इसकी याद बनी रहती है। इसकी याद बनी रहेगी, तो भक्ति भी सरल बन जायेगी। जैसे किसी इन्सान की आँखें तो सही काम कर रही होती हैं, लेकिन फिर भी चलते–चलते किसी चीज़ से टकरा जाते हैं तो दूसरे आदमी से पूछते हैं, 'क्या आपकी नज़र कम है? क्या आपके मोतिया उतरा हुआ है? या आपको शै (वस्तु) का आधा हिस्सा नज़र आता है, या कोई धुँधलापन है? जवाब मिलता है कि मुझे सब सही दिखाई देता है मेरी नज़र बिल्कुल ठीक है। पूछने वाला कहता है, 'तो फिर आप टकरा कर ठोकर क्यों खा गये?' कहता है, 'नज़रों का काम है देखना लेकिन मैं अपनी किसी सोच में चल रहा था, मेरा ध्यान कहीं और लगा हुआ था।'' आँखें भी काम कर रही हैं, रोशनी भी है लेकिन ध्यान कहीं और लगा हुआ है, तो चलते–चलते किसी चीज़ से टकराकर लड़खड़ा गये हैं। इसी तरह से यह ज्ञान रूपी रोशनी दे दी गई है, लेकिन फिर भी मन का ध्यान अगर संसार में लग जाता है, लालसाओं में लग जाता है, तो वही पल हमारे लिये परेशानी का, ठोकर का पल होता है, क्योंकि इस प्रभु को भुला दिया होता है, इसको बिसार दिया होता है।

सिमरन को त्यागकर इस दातार को भुलाकर, अगर कोई कर्म किया जा रहा है, कोई बोल बोला जा रहा है, तो हम सभी जानते हैं कि वो कभी भी सही बोल नहीं होगा, सही कर्म नहीं होगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हाथ में तो हमारे माला आ जाती है। जैसे सन्त कबीर जी भी कहते हैं कि -

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डाल दे, मन का मनका फेर।
माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवा तो दस दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।

साधसंगत! बनावटी या दिखावटी सिमरन व्यर्थ होता है। धर्म ग्रन्थों में, शास्त्रों में बयान किया गया है कि कोई तो लोकपचारे (दिखाने) की खातिर ऐसा करता है कि संसार के इन्सान देखें कि मैं कितना भक्त हूँ, लेकिन वह नाम किसी लालसा के लिये है। जैसे एक भिखारी भी नाम जप रहा होता है। वह भी इस प्रभु का नाम किसी न किसी ढंग से लेता है, राम-राम करता है, लेकिन राम-राम उनकी केवल जुबान कह रही है। हृदय की तार भी राम से जुड़ी हो, फिर तो ठीक है, लेकिन जुबान ही अगर बार बार 'राम' कह रही है और आँखें देख रही हैं कि पटरी पर बैठा हूँ, सामने से कितने इन्सान निकलते हैं, कौन मेरी तरफ मुड़ता है और मेरे कासे में चार पैसे डालता है। किस जेब में हाथ गया है, मुझे पैसे निकालकर दे रहा है। दिमाग, आँखें सब इसी तरफ लगे हैं, लेकिन जुबान इस प्रभु का नाम ले रही है, तो इसको कभी महापुरुषों ने भक्ति की भावना नहीं माना। इसको कभी भी सिमरन का दर्जा नहीं दिया। भक्तों का सिमरन तो और होता है। अगर वे इस प्रभु का नाम लेते हैं, तो सब कुछ इस प्रभु की तरफ ही अर्पण होता है। इसलिये महापुरुषों ने, सन्तों ने, भक्तों ने, गुरु, पीर, पैगम्बरों ने ऐसे दिखावे की भक्ति को हमेशा व्यर्थ कहा है, निम्न कोटि की कहा है।

एक बार लैला मजनू के ध्यान में निकल रही थी, रास्ते में कोई इन्सान प्रभु की इबादत कर रहा था। उसके सामने से लैला निकली, तो उसने रोककर कहा कि 'तूने मेरी इबादत भंग कर दी है। मैं तो इबादत कर रहा हूँ, तूने इसमें विघ्न डाल दिया है।'' तब लैला कहने लगी, 'मैं तो इश्क-मिजाजी (लौकिक प्रेम) में यहाँ से किसी के ध्यान में गुज़र रही थी, लेकिन तेरा तो

प्रभु से इश्क है, तू प्रभु की इबादत कर रहा था जिसे इश्क हकीकी (अलौकिक प्रेम) कहा जाता है। ऐसा इश्क करने पर भी तुझे यहाँ से लैला (मैं) निकलती नज़र आ गई, पर मैं, जो एक इन्सान के प्यार में यहाँ से गुज़र रही हूँ, मुझे तो तो तू नहीं नज़र आया। कहने का भाव कि आज संसार में इन्सान जिस तरह सिमरन कर रहा है, उसके साथ ध्यान और मन की एकाग्रता नहीं, जिससे सिमरन का वह फल नहीं मिलता, जो मिलना चाहिये।

महात्माओं ने उत्तम सिमरन के बारे में कहा कि –

सुमिरन की सुधि यूं करो, ज्यों गागर पनिहार,
हाले डोले सुरत में कहे कबीर विचार।।

जिस तरह से बहनें कुएं से पानी भरती हैं और पानी भरकर अपने घर पर लाना ही होता है। हम ऐसा नहीं करते हैं कि अगर पानी को बरकरार रखना है, घड़ा पानी से भरा रहे, छलके नहीं, गिरे नहीं, इसलिये ऐसा करो कि उस घड़े को वहीं रख दो। फिर तो परपज़ (प्रयोजन) की 'डिफीट' (नष्ट) हो जाता है। वो मटका तो भरा है घर ले जाने के लिये, प्यास बुझाने के लिये, अतः वो घड़ा सर पर रखता है। एक घड़ा बगल में उठाया होता है। वो अपने घर की तरफ चलती हैं, वे सभी कर्म लिये जा रहे हैं। सभी क्रियायें हो रही हैं, लेकिन सभी कुछ करते हुये उनका सूक्ष्म तौर पर ध्यान अपने मटके, अपने गागर की ओर ही लगा होता है। इस ढंग से उनका पांव आगे बढ़ता है कि वह उस पानी से भरे हुये घड़े को डोलने नहीं देती। इसलिये कहा है कि ऐसे ही परमात्मा के ध्यान में ही, सुरत में ही संत सब काम करते हैं।

कहने का भाव कि कर्म के क्षेत्र में तो रहना है, कर्म तो करना है। एक मां का प्यार अपने बच्चे के साथ क्या इस तरह से निभ सकता है या साबित होता है कि मां अपने बच्चे के सिरहाने 24 घंटे बैठी ही रहे और कोई काम–काज करे ही नहीं। वह रसोई में जाती है, पति को खाना परोसकर देती है, वह तो सभी कार्य करती है। सभी कार्य करते हुये उसका ध्यान अपने बच्चे की तरफ होता है। अपने उस बेटे का निवास उसके रोम–रोम में होता है, एक–एक धड़कन उस बच्चे के प्रति लगी होती है। इसी तरह का सिमरन महापुरुष ईश्वर की भक्ति को प्राप्त करने के लिये करते हैं। किसी ने इसे

भाग जाने के लिये नहीं कहा, कर्म से मुख मोड़ लेने के लिये नहीं कहा, महापुरुष तो कर्मयोगी बनकर रहे हैं।

ज्ञान के बाद सिमरन और सिमरन के साथ–साथ ध्यान (परमात्मा से अटूट सम्बन्ध) ज़रूरी है। भक्तों की केवल रसना या जुबान ही इसका नाम नहीं लेती वास्तव में उनका नाता इस हरि के साथ जुड़ा होता है। वे केवल प्रभु का नाम ही उच्चारण नहीं करते, उनके हृदय का नाता भी प्रभु से जुड़ा होता है –

कबीर जपनी काठ की, किआ दिखलावहि लोइ।
हिरदै रामु न चेतही, इह जपनी किआ होइ।

कहा है कि अगर हृदय का नाता नही जुड़ा हुआ, मन में अगर मैल है, मन गर कठोर है और सिर्फ जुबान नाम ले रही है, तो इन्सान उससे तेरा कुछ नहीं बनने वाला। वास्तव में जो सन्त होता है, भक्त होता है, वह रोम–रोम से इस प्रभु की अराधना करता है, हर पल, हर क्षण, चलते–फिरते, काम करते हुये इसी परमात्मा का एहसास उसके मन में बना रहता है। जो वास्तविक भक्त होते हैं, वे इस प्रभु का एहसास आठों पहर बनाकर रखते हैं। अगर आठों पहर इसका एहसास बना रहता है, तो फिर कोई कारण नहीं कि इसके मन में द्वेष भावना जागृत हो, इन्सान मन में पराये के भेदभाव खड़े हों या इन्सान का मन अभिमानी बने। इस प्रभु के साथ नाता जोड़ने की बात कही गई है। जैसे दुनिया के और भी सभी काम नामों से नहीं चल रहे हैं? मकान है, पैसा है, गाड़ी है, क्या उनका नाम लेने से ही हमारा काम चल रहा है? क्या केवल मकानों का नाम लेने से ही हम आँधी–तूफानों से बच पा रहे हैं? या केवल मोटर गाड़ी या जहाज़ का नाम लेने से हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं? ऐसा तो नहीं। हम जानते हैं कि जिन चीज़ों का नाम है, वे चीज़ें अपना लेने पर ही हमारे काम संवारती हैं। इसी तरह से जिस प्रभु का नाम है, इस नामी को भी हमने जानना है। इसको अपना लेंगे तो हमारी सारी जो कमियां हैं, जो एक दूसरे को पराया मानने की भावनायें हैं, सभी समाप्त हो जाती हैं। इन्सान–इन्सान के करीब आ जाता है, यह जान जाता है कि –

अवलि अलह नूर उपाइया कुदरति के सभ बंदे।

एक नूर ते सभु जग उपजिआ कउन भले को मंदे।।
लेकि भरमि न भूलहु भाई,
खालिकु खलक, खलक महि खालिकु, पूरि रहिओ सब थांई।।

यह जान जाते हैं कि –

सबै घट रामु बोलै, रामा बोलै राम बिना को बोलै रे।

इस करतार, इस प्रभु निरंकार का जिसने ध्यान कर लिया है, उसे ऐसी ठंडक और सुख मिले हैं कि जिस पर ताप के कारण, जिस रोग के कारण जलन हो रही थी, उसके स्थान पर तमाम परिवार को ठंडक मिलनी शुरू हो जाती है। ये जीवन आनन्दमय हो जाता है। महात्माओं ने तभी कहा है कि –

भजहु गोबिन्द भूलि मत जाहु।
मानव जन्म का एही लाहु।

कि इस गोबिन्द को भूलना नहीं, क्योंकि इसको भजने के लिये इसके साथ नाता जोड़ने के लिये दातार ने यह मानव का जन्म दिया है। ये मानस देहि प्राप्त हुई है, तो प्रभु को कभी भी मन से बिसारना नहीं है। इसको कभी मन से भुलाना नहीं। इसकी याद जिसको बनी रहती है, उसकी *'तुद चित्त आवे महा आनन्दा'* की स्थिति हो जाती है। यानी हे दातार, अगर तेरा ध्यान मन में लगा रहता है, तो हमेशा ऐसा महान आनन्द प्राप्त होता है, ऐसा महान सुख प्राप्त होता है जो दुनिया भर की वस्तुयें (पदार्थ) मिल जाने पर भी, वैसा सुख नहीं मिलता। तभी कहा गया है –

फिकर करे सों बाबरे, जिकर करें सो आप।
उठ फरीदा जिकर कर, फिकर करेगा आप।।

सिमरन एक ऐसा आसरा है जो इस ज्ञान की ज्योति को हमेशा जलाये रखता है। संत सदा सिमरन को, इसी याद को ही हृदय में बसाये रखते हैं, तो ज्ञान की ज्योति जली रहती है। वही उजाला देती और जीवन के मार्ग को सरल बना देती है। अगर उजाला रहे, परन्तु अपनी आंखें बन्द कर जी जायें,

फिर हमें ठोकरों का सामना करना पड़ता है। ज्योति जल रही है, रोशनी है, तब अपनी आंखें खोलनी भी तो बहुत ज़रूरी है। अगर रोशनी जला दी जाये और हम खुद अपनी आँखों के ऊपर पट्टी बांध लें, अपनी आँखें बन्द कर लें, और अन्धकार ही अन्धकार होता है और उसके असर ग्रहण करने पड़ते हैं। हम अपनी आँखें खोल के रखें, इस ज्ञान की रोशनी से लाभ होते हुये इस जीवन की राह में हर प्रकार के सुख प्राप्त करते रहें।

रास्ते में एक खम्बा है। इन्सान चल रहा है। उसकी आँखें देख रही हैं। जो कुछ भी सामने है, उसकी आँखों की रोशनी के दायरे में है। वहाँ जो कुछ भी है, उसकी आँखें देख रही हैं। लेकिन फिर भी खम्बे के साथ टकरा जाता है। सब उसे कहते हैं, 'भले मानस! ये सामने तुझे सड़क दिखाई नहीं दे रही?' कहने लगा, 'सारी सड़क बिल्कुल साफ दिखाई दे रही है।' 'सड़क दिखाई दे रही है तो यह खम्बा तुझे दिखाई नहीं दिया?' वो कहने लगा, 'मेरा ध्यान किसी और तरफ लगा हुआ था।' चीज़ें तो सामने थीं। जिस तरह से आँखें देख रही थीं, आँखों ने उस खम्बे को अवश्य देखा होगा, लेकिन ध्यान किसी और तरफ लगा हुआ है। इसी तरह से यह प्रभु–परमात्मा तो हर जगह मौजूद है, लेकिन इसकी गैर–हाजिरी हो जाती है अज्ञानता और असावधानी (प्रमाद) के कारण। उसी गैर–हाजिरी तब हो जाती है, जब इन्सान आँखें बन्द कर लेता है। उस सच्चाई से मुनकर हो जाता है और गफलत की नींद में सो जाता है। इसीलिये ही लोगों के जीवन में बचैनी है, दुख है, कलेश है।

सन्त महापुरुष अपना काम करते हुये भी परमात्मा का सिमरन करते रहते हैं। गुरु नानक देव तुलाई करते समय तराजू के पलड़े गिन रहे थे। एका, दोवां आदि कर रहे थे। जब 12 के बाद 13 पर पहुँचे तो 'तेरा ही तेरा' कहना शुरू कर दिया। इस दातार के साथ ही ध्यान जुड़ गया, इस दातार में ही खो गये। इसी तरह से 'तू ही तू' का सिमरन दिया गया है। 'मैं' सिमरन कहीं नहीं दिया गया है। ज्ञान देने के बाद हमें इस 'तू ही निरंकार' का सिमरन दिया गया है, लेकिन तू को अगर दूर करके हम बीच में 'मैं' को ले आते हैं, अपने आप को अहमियत देना शुरू कर देते हैं, तो वह घड़ी बेचैनी की घड़ी बन जाया करती है। अगर इस तूही का ध्यान किया, अगर इस तू ही को ही समर्पित हुये, इसको ही समर्पण कर दिया तो जीवन का हर पल सुख में और आनन्द में व्यतीत हुआ करता है। तभी तो कहा है–

सिमिर सिमिर सिमिर सुख पाइआ।

इस दातार इस निराकार का सुमिरन करते हुये जो वास्तव में अपने मन को लगा देता है, उसका मन हमेशा आनन्द में रहता है, हमेशा उसकी सहज अवस्था रहती है। वे कभी किसी की बातों को ग्रहण नहीं करते।

साध संगत! इस निरंकार प्रभु–परमात्मा को जिस जिसने भी अपना लिया है, उसके मन की जोत जग उठी है। जब ज्योति जग उठती है और दायें, बायें या किसी तरफ से भी हवा चलती है तो उस लौ को चारों तरफ हाथों से ढाँक लेते हैं, दोनों हथेलियों से, इस तरह से चारों तरफ उस लौ को एक चादर सी ओढ़ा लेते हैं, जिसके कारण हवा दीपक की उस लौ पर असर नहीं करती और वह बुझ नहीं सकती है। इस तरह से ज्ञान की लौ, ज्ञान की ज्योति को, जो गुरु की कृपा से जगाई जाती है, इसकी भी देखभाल की जाती है, इसको बुझने नहीं दिया जाता। किसके द्वारा? साधसंगत के द्वारा, सेवा के द्वारा, सिमरन के द्वारा। यह एक ऐसी ढाल है, जो इस ज्ञान की ज्योति को बुझने नहीं देती।

हर समय, उठते–बैठते, सब काम करते हुये जब इसका ध्यान रहता है या एहसास (अनुभव) है, तो वही वास्तव में सिमरन होता है। जिस तरह से एक गाय का बछड़ा होता है। हम जानते हैं कि बछड़ा कहीं पर भी हो, गाय का ध्यान बछड़े की तरफ लगा रहता है। जिस प्रकार हमारा अपना बच्चा हो तो हम कहीं पर भी काम करते हैं, तो ध्यान हमारा बच्चे की तरफ होता है। जिस तरह एक माँ बच्चे की याद सदैव करती है। उसके रोम–रोम में उसकी याद समाई होती है। वह चाहे रसोई में काम करे, चाहे कोई घरेलू कार्य करे, उसको जो प्रेम है, जो ध्यान है, उस बच्चे के साथ जुड़ा होता है। इसी तरह से भक्त भी जीवन के कार्य करता है। यह चलता भी है, दौड़ता भी है, बैठता भी है और अपने फर्जों को निभाता हुआ भी प्रभु को भुलाता नहीं। इसकी याद आठों पहर बनी रहती है मन की तार इसके साथ जुड़ी रहती है।

एक मछली का जीवन पानी के द्वारा ही है। जिस तरह मछली को पानी का ध्यान रहता है, एक पल भी यदि वह पानी को भुला देती है, आँखों से ओझल कर देती है, पानी से नाता तोड़ लेती है, तो हम जानते हैं कि किस

तरह तड़पती है, इसी तरह से तड़प–तड़प कर उसके स्वास चले जाते हैं। भक्त के लिये यह परमात्मा, यह निराकार, यह अकालपुरख भी इसी तरह से प्रिय होता है। जो इसको भी इसी तरह से मन में बसा कर चलते हैं, जीवन का आधार बना कर चलते हैं, वे ही जीवन को आनन्दित अवस्था में रख पाते हैं।

हम सभी जानते हैं कि माँ घर का काम करती है। रसोई में भी जाती है। सिलाई का काम भी करती है। बाज़ार में खरीदारी करने भी जाती है। वह अपने सारे कर्त्तव्य निभा रही है, फिर भी उसके मन में वह बच्चा बैठा हुआ है। रसोई में काम करते हुये भी उसका ध्यान लगा रहता है कि बच्चा जो पलंग पर लेटा हुआ है, कहीं किनारे पर तो नहीं पहुँच गया। पता नहीं इसके ऊपर से चादर तो नहीं उतर गई। पता नहीं किसी ने पंखा तो नहीं चला दिया है। बार–बार उसका ध्यान आता है।

इसी तरह से पंजाब में भी एक कहावत आती है कि –

हथ कार वल ते दिल यार वल।

हाथ कर्म की ओर हो और दिल इस प्रभु–परमात्मा, इस प्रीतम के साथ जुड़ा हो। यही सच्चा स्मरण है।

हर कर्म करने से पहले इसका ध्यान हमें आ जाये कि मुझे देखने वाला भी यह प्रभु–परमात्मा है। मैं इन्सानों की आँखों में छुप सकता हूँ। लेकिन जिसके आगे मैंने जवाब देना है, उसकी आँखों से नहीं छिप सकता। इतना एहसास अगर मन में आ गया, तो बुरे कर्म नहीं होंगे। बुरे बोल नहीं बोले जायेंगे। किसी से बुरा व्यवहार कभी नहीं होगा। सिमरन से ही सुख मिलता है। तभी तो कहा गया है –

जे सुख को चाहे सदा, तो शरण राम की ले।

अगर इन्सान सदा के लिये सुखी होना चाहता है तो राम की शरण लेनी होगी। राम की शरण लेने का भाव कि अपनी 'मैं' को मिटा देना। इसको अपना लेना। इसका हो जाना। कभी भी इस दातार को बिसराना नहीं।

सेवा

साध संगत! जो तन–मन और धन की सेवा की महत्ता को जानते हैं, वे हमेशा पक्के रहते हैं, पूर्ण रहते हैं और जो किसी भी सेवा में हिस्सा नहीं लेते, बल्कि नुक्ताचीनी में पड़े रहते हैं, वे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते, बल्कि जो कुछ उनके पास है, वह भी गंवा बैठते हैं। जैसे एक औरत से पूछा गया कि तू हैरान–परेशान क्यों है? तो वह बोली कि मैंने न कुछ दिया है, न कुछ लिया। दूसरे को दान देते देखकर मैं अवश्य हैरान हूँ। भाव, जो खुद सेवा के लिये कुछ समय निकाल नहीं सकता और अगर दूसरा कोई सेवा करता है तो उसकी नुक्ताचीनी शुरू कर देता है। यह वास्तव में छोटेपन की निशानी है। भक्त मन करके नीचे होते हैं, लेकिन मत करके ऊँचे भी होते हैं। अगर भक्त भी इस तरह की सांसारिक बातें, तंग दृष्टि अपना लेंगे तो फिर संसार का क्या होगा?

यह तो वैसी अवस्था है कि अगर कोई दो सीढ़ियों से गिर पड़े तो शायद उसे ज़्यादा चोट न आये, लेकिन जो छह–सात मंज़िलें चढ़कर गिर जाये, उसकी क्या हालत होती है, यह सोचना मुश्किल नहीं। इसी प्रकार भक्त ऊँचाइयों को प्राप्त कर चुके होते हैं। अगर इन ऊँचाइयों पर पहुँच कर वह गिर पड़ें तो उनका क्या बनेगा? इसलिये दातार से आठों पहर यही अरदास करनी है कि हे दातार ऐसी मेहर कर, कृपा कर कि अन्त श्वासों तक मन नींवा (नीचा) तथा मत ऊँची बनी रहे तथा पक्के (विश्वासी) इन्सानों के साथ ही मिल कर बैठें, कोई भी कच्चा न रहे, अधूरा न रहे।

सेवा वही अच्छी होती है जो दिल से की जाये। दो सेवादार गुरु की सेवा में हाज़िर थे। शहर में मेला लगा तो एक सेवादार को मेला देखने का मौका मिल गया। वह जाकर मेला देखता है, खेल–तमाशे देखता है, लेकिन ध्यान उसका गुरु साहब की तरफ लगा रहता है कि 'पता नहीं गुरु साहब को किसी ने पानी दिया है या नहीं, उन्हें किसी ने पंखा किया है या नहीं आदि–आदि।' उधर दूसरा गुरसिख जिसे मेला देखने का मौका नहीं मिला, वह सोच रहा है कि 'मैं यहाँ फंस गया हूँ, वह पहला (सेवादार) तो बड़े मज़े में होगा।' सुबह जब दोनों गुरसिख गुरु साहब के सामने गये तो गुरु साहब ने मेला देखकर आने वाले गुरसिख से कहा – 'कल तूने मेरी बड़ी सेवा की।' इस पर दूसरा गुरसिख कहने लगा – 'गुरु जी, आपको शायद कुछ भ्रम हुआ है,

यह तो मेला देखने गया था, यहाँ तो मैं था, मैं आपकी सेवा कर रहा था।' तब गुरु जी बोले – 'शरीर करके भले ही यहाँ नहीं था, लेकिन इसका ध्यान मेरी सेवा की तरफ ही था, इसकी हाजिरी यहीं थी जबकि यहाँ शरीर करके हाजिर होने के बावजूद भी मन करके तू यहाँ नहीं था।'

इस मिसाल के पीछे केवल एक ही भाव है कि गुरु का ध्यान करके किया हुआ कर्म ही प्रधान हो जाता है। कई बार इन्सान चालाकी भी कर जाता है, सोच लेता है कि आज भले मेला देखो, वहाँ हाज़िरी तो लग ही जायेगी। यह दिमाग की चालाकी है, दिमागी खोज है। दिमाग जो सोचता है, उसमें बनावट हुआ करती है। वास्तव में भक्ति दिमाग का विषय नहीं, बल्कि हृदय का विषय है। जो अन्दर–बाहर से एक होकर निर्मल भाव में लग जाते हैं, वास्तव में उनका ही मुख उजला होता है तथा वे ही हर प्रकार के सुख प्राप्त करते हैं।

सेवा का महत्व सेवादार ही समझता है। वही जानता है कि भक्ति क्या है? भक्त एक खिला हुआ फूल होता है और भक्ति उसकी महक हुआ करती है। भक्त हमेशा अर्पित भाव से जीवन व्यतीत कर देता है। इस निराकार परमात्मा के आगे सर्वस्व अर्पण कर देता है –

कबीरा मेरा मुझ महि किछु नहिं जो किछु है सो तेरा।
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा।।

हमारे शरीर के ऊपर लगा हुआ चेहरा, हमारे शरीर की पहचान बनता है, इसी बात को जब दास ने कहा तो उसके बाद इसके उलट भी एक बात ध्यान में आई कि शरीर, जिसका सर नहीं है, उसकी कोई पहचान नहीं हो पाती है। इसी तरह जो अपने शीश को अर्पण कर देता है, उसी अपनी पहचान बाकी रह नहीं जाती। वह जिसको शीश देता है, उसी जैसा हो जाता है। भक्त की ये भावना होती है कि अपने होमे (अहंकार) रूपी शीशे को अर्पित कर देता है। इसको अपने पास नहीं रखता है। साधसंगत! इसलिये महापुरुषों ने कहा है कि:

न हम किया न कर सकें, न कर सके शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, हुई कबीर कबीर।।

वे अपने अहंकार में यह नहीं कहते कि मैं करने वाला हूँ, मैं ये सब करता हूँ, मेरे पास बड़ी विद्या है, मैं बहुत नई चीज़ें बना लेता हूँ। मेरे पास ऐसी अक्ल है कि मैं कइयों को हिला कर रख सकता हूँ। ऐसा व्यक्ति तो अपने आपको ही कर्त्ता मान बैठता है, अपने सर पर ही सेहरा बांधना चाहता है।

भक्त महापुरुष सेवा करके भी कर्त्ता भाव नहीं रखते। सेवा का कर्त्ता खुद को न मान कर प्रभु की कृपा मानते और जानते हैं। गुरमुख महापुरुष जो भी कार्य करते हैं, हमेशा अर्पण भाव से करते हैं। गुरमुख महापुरुष जो भी कार्य करते हैं, यही मानते हैं कि यह किसी भले काम में लग रही है और मैं कौन हूँ करने वाला? दातार, तू ही अवसर प्रदान कर रहा है, जो ये सेवा का मौका मिल रहा है। सेवा करते हुये मेवा भी तभी प्राप्त होता है, जैसे कहा है–

सतिगुरु की सेवा सफलु है जैको करो चितु साई।

हृदय से जो सेवा करता है, वह कोई स्वार्थ या लालसा रखे बगैर ही इस सेवा के मार्ग पर चलता जाता है।

ध्यान रहे, भक्ति तो संसार भी कर रहा है, लेकिन परमात्मा के बिना जाने जो भक्ति की जाती है, उसका कोई लाभ नही मिलता।

संसार की भक्ति के लिये बाबा अवतार सिंह जी लिखते हैं कि –

भक्ति लोकी अजे ना समझे, रब नूं पाणा भक्ति ए।

भक्ति का आरम्भ ही तब होता है, जब प्रभु को पाकर इसके साथ नाता जोड़ लिया जाता है। अगर हमारे जीवन में कोई आया ही नहीं, तो हम प्यार किससे करेंगे? जैसे किसी माँ की गोद में बच्चा अगर आया ही नहीं, तो वह प्यार किससे करेगी? इसका स्नेह किसके साथ बनेगा? इस प्यार और मोह के लिये गोद में बच्चा आना ज़रूरी है। जैसे बिजली का कनैक्शन ही अगर हमारे घर तक नहीं आया, तो हम चाहे कितने ही बल्ब खरीद लें, हमारे घर में रोशनी नहीं हो सकती। अगर बढ़िया–बढ़िया, कीमती मशीनें, कमरा गर्म करने

वाली मशीनें, ठंडी हवा देने वाली अथवा हर प्रकार के सुख देने वाली मशीनें हमारे घर में हों, लेकिन बिजली का कनैक्शन ही न हो, तो वे हमारे किसी काम नहीं आतीं। इसी प्रकार, इस प्रभु दातार को जानकर, इसके साथ नाता जोड़ने के बाद ही, इसकी भक्ति की जा सकती है। इस दातार को आठों पहर ध्यान में रखना, उठते-बैठते, चलते-फिरते इसका एहसास करना ही भक्ति है। ऐसा मानना चाहिये कि यह दातार इन्सान की हर हरकत से वाकिफ है। एक पल भी ऐसा नहीं होता जब यह परमात्मा गैरहाजिर हो। दूसरे इन्सानों की गैरहाजिरी तो हो सकती है, लेकिन इस प्रभु की गैरहाजिरी एक पल भी नहीं हो सकती। इसकी गैरहाजिरी होती है तो मन से होती है, और जब मन से इसकी गैरहाजिरी होती है, उसी वक्त हम से बुरे कर्म होते हैं, हम दूसरों का बुरा सोचते हैं, दूसरों का बुरा मांगते हैं। गुरमत में तीन चीज़ें ज़रूरी हैं – भक्ति, भक्त और भगवान। भाव, भक्त भी ज़रूरी है, भक्ति भावना भी ज़रूरी है और जिसकी भक्ति की जा रही है, भगवान भी ज़रूरी है।

साधसंगत! सेवा के जितने भी कार्य हैं, गुरमुख महापुरुष उन्हें करता हुआ भी अपने आप को कभी कर्त्ता नहीं मानता, वह तो यही कहता है, यही उसके मन में बात बैठी होती है कि वास्तव में –

अपना किया कुछ न होए।
करे राम होए है सोए।।

कि अपने करने से कुछ नहीं हो सकता है। कोई इन्सान यह सोच ले कि मैं ही सब कुछ करने वाला हूँ, तो यह इन्सान की भूल है।

वास्तव में भक्त यह मानता है कि दातार करने वाला है, यह मालिक करने वाला है और इस भावना से ही अपने कर्म को करता है। कर्म करते हुये यह किसी स्तुति की लालसा या किसी और चीज़ की कामना नहीं रखता। जैसे महापुरुष सन्त हमेशा यही कहते हैं कि हमने काम करना है, कामना नहीं करनी है।

जो इस प्रकार से सेवा करता है, जो निष्काम भाव से, कर्म करता है, उसने ही वास्तव में अपने आप को इस प्रभु के प्रति समर्पित किया है। उसने ही वास्तव में अपना तन-मन-धन इस दातार का माना है। समर्पण की भी कई श्रेणियां बताई जाती हैं। किसी ने कहा कि ऐसी अवस्था होती है कि जो मेरा है, वह तो मेरा है ही, जो तेरा है, वह भी मेरा है। दूसरा कहता है जो

तेरा है, तेरा ही है, जो मेरा है वह मेरा है। लेकिन तीसरी अवस्था वाला कहता है, सब कुछ तेरा है।

साधसंगत, ऐसी निष्काम भावना जिसने भी रखी है, उसी को ही सहज अवस्था प्राप्त हुई है। वही सांसारिक लेपों से दूर रहा है, वह यश और अपयश से ऊपर उठा है, वही दुःख–सुःख, हर्ष–शोक से न्यारा रहा है। जिसने यह समर्पित भाव नहीं रखा है, वास्तव में वही कदम कदम पर गलतान हो जाया करता है। उसके ऊपर माया का असर होता है। दास तकरीबन हर महीने सन्त निरंकारी पत्रिका आदि पर नज़र डालता है। उसमें किसी महापुरुष की कोई कविता छपी, जिसमें महापुरुषों ने लिखा है कि वास्तव में ज़ुबान से तो मैं कह देता हूँ कि सबसे बुरा मैं हूँ और सभी मेरे से भले हैं, लेकिन मुझे कोई बुरा कह दे, फिर मैं उस करने वाली की जो हालत करता हूँ, वो देखने लायक है। एक घुड़सवार से किसी ने कहा कि भाई साहब यह घोड़ा तो बहुत अच्छा नज़र आ रहा है, ज़रा मुझे दिखा दो, इसकी सवारी करके देखूं। वह सवारी करने लगा और घोड़ा भगाकर ले गया। जिसने दिया था वह लौट कर घर आ गया। उसकी पत्नी पूछती है क्या घोड़ा आप बाज़ार में बेच आये हो? किस भाव बिका है? वह कहने लगा कि जिस भाव आया था, उसी भाव बेच दिया है। यानि की वह भी चुरा कर ही लाया था, आगे कोई उससे भी चुरा कर ले गया।

कहने का भाव यह है कि जिस भाव से हम सेवा करते हैं, वैसा ही फल मिलता है। कहा भी जाता है, जिसकी जैसी भावना वैसी उसकी सिद्धि।

भक्त निष्काम भाव से भक्ति करते हैं। अगर साधसंगत में आते हैं, सेवा करते हैं, तो इस भावना से नहीं कि पदार्थ के रूप में या किसी और रूप में हमें कोई प्राप्ति होती है। ये भक्ति निरोल एक प्रेमभाव से करते हैं। जिस तरह से एक मां का प्यार अपने बच्चे के साथ होता है, एक निरोल वात्सल्य भावना उसके साथ जुड़ी रहती है, इस तरह से भक्त हमेशा इस निराकार दातार की भक्ति करता है, एक फर्ज़ मानकर एक कर्म मानकर ही करता है। कभी कामना नहीं रखता, लालसा नहीं रखता। संसार में हम देखते हैं कि भक्ति भी शर्तों के साथ की जाती है। इसलिये सहज अवस्था नहीं प्राप्त होती है। जब कुछ प्राप्त हो जाता है, तो आकाश को छूने लगते हैं और कहीं पर कोई

देरी हो जाती है या नहीं प्राप्ति होती तो उसी वक्त गिले–शिकवे, इस दातार की तरफ, शुरू हो जाते हैं। लेकिन भक्त की बहुत ऊँची अवस्था है। कि –

जो नरु दुख मैं दुखु नहीं मानै,
सुख सनेहु अरु भै नहीं जाकै कंचन माटी मानै।।
एकरस सहज अवस्था इसकी होती है। और संसार में –

फल कारण सेवा करे, तजे न मन से काम,
कहे कबीर सेवक नहीं, चाहे चौगुना दाम।।

साधसंगत, जितने भी भक्त महापुरुष इस संसार में हुये हैं, जिनका हम आज नाम लेते हैं, उनके भक्ति भाव को हम जानते हैं कि अपनी मत को त्याग कर अपनी लालसाओं को त्याग कर ही उन्होंने भक्ति की। पूर्ण तौर पर हुक्म को मानकर हुक्म में रहकर ही उन्होंने भक्ति की।

अगर बहुत सरदारियां भी बख्शी गई, तब भी ऐसी ही भावना प्रकट करते रहे हैं कि दातार चाहे कितना भी संसार में यश करा दे, लेकिन यह जो तबेले में, (अस्तबल में) सेवा मिली है, यह हमेशा प्राप्त होती रहे।

सेवा या भक्ति की इतनी बारीक डगर है। जिस तरह से अवतार बाणी में कहा है कि –

खंनिअहु तिखी वालहु निकी।

(बाल से बारीक, तलवार से तेज़)। कोई किसी चौड़ी दीवार के ऊपर चल रहा हो तो हमें थोड़ा आश्चर्य होता है और अगर जगह कम हो, एक ईंट की दीवार के ऊपर चल रहा हो तो हमें आश्चर्य और ज़्यादा होता है। फिर एक पतली तार के ऊपर चलना शुरू हो जाता है, तो देखते हैं कि कितनी कठिनाई से वह चलता है। जब वह उस तार के ऊपर सहज भाव से चलता जाता है, तभी वास्तव में उसकी ज्यादा जय जयकार होती है। इसी तरह से इस मार्ग (सेवा) के ऊपर भी जो चल पड़ता है, उसको भी संसार में यश प्राप्त होता है। भक्त का ऐसा ही जीवन होता है। वह आठों पहर प्रभु की कृपा मानता है और कभी अपने आपको कर्त्ता नहीं मानता। कभी अपने आपको

दाता भी नहीं मानता। यही जानता है कि दाता एक है, एक ही देने वाला है। यह पालन–पोषण करने वाला है। हमेशा आठों पहर इसका ही शुकराना करता है। जब वह ठंडे में गर्म में, उतार में – चढ़ाव में, एक प्रभु को ही कर्त्ता मानकर चलता जाता है, तो इसका जीवन सरल बन जाता है, वरना कदम–कदम पर ये डोल सकता है। बहुत यश मिल जाये, तब भी डोल जाता है और यदि हाथ से कोई सांसारिक वस्तु चली जाये, तब भी ये डोलायमान हो सकता है। तब भी इसकी मायूसी वाली अवस्था हो सकती है। एकरस जो चलता है, वह वास्तव में भक्त होता है और एकरस तभी हो सकता है, जब अपना पूर्ण विश्वास दातार के ऊपर रखता है। अपना अकीदा इस दातार पर रखता है।

सेवादार भाई कन्हैया की दृष्टि से सब की सेवा करता है। वह अच्छे बुरे या अपने बेगानों का फर्क, सेवा में नहीं करता।

बुरयां नाल सब बुरा करेन्दे, माफ करन कई सियाणे।
बुरयां नाल फिर नेकी करना, ए गुरनानक जाणे।

यानि बुरे का भी भला कर। साधसंगत, गुरमुखों, महापुरुषों, सन्तों–भक्तों के मन में ऐसी ही भावना होती है। हम महापुरुषों की साखियां पढ़ते हैं, हम महापुरुषों के जीवन की गाथायें गाते हैं, सुनते हैं, सुनाते हैं। उसमें भी हमें यही मिलता है कि महापुरुषों के साथ कैसा भी व्यवहार किया जाता रहा, लेकिन वे उनका भी भला चाहते हैं और यही मांगते हैं कि अज्ञानतावश यह इन्सान इस तरह से कर रहा है।

दादू भगत के बारे में भी एक ऐसी घटना मिलती है। कोई ऐसा इंसान था जो शहर के इंतज़ाम में लगा हुआ था। उसको किसी ने बताया कि यहाँ पर सन्त महापुरुष दादू भगत हैं। उसके मन में आया चलो उनके दर्शन करते हैं, जीवन का बहुत समय माया में व्यतीत कर दिया, अब कुछ भक्ति के मार्ग पर लगना चाहिये।

ऐसा विचार करके वह अपने घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा। आगे जब बढ़ा, रास्ते में एक इन्सान को देखा जो कुछ झाड़ियां वगैराह काट रहा था। उसको पूछता है कि यहाँ पर दादू भगत रहते हैं, वे किधर हैं? उस व्यक्ति ने सुना नहीं और झाड़ियाँ काटने में मस्त रहा। उसने फिर पूछा कि मुझे रास्ता

बताओ कि भगत कहाँ रहता है? फिर भी उसने जवाब नहीं दिया। जब उससे सहन नहीं हुआ तब उसने घोड़े के ऊपर से ही उस इन्सान को लात लगा दी, नीचे गिरा दिया और हाथ में जो घोड़े के लिये चाबुक थी, चाबुक से भी उसे मारा तथा घोड़ा बढ़ाकर आगे चला गया। उसने एक और इन्सान से पूछा कि दादू भगत कहाँ पर रहते हैं? वह बोला, 'यहीं पर रहते हैं।' पूछा, 'कहाँ है?' उस इन्सान ने कहा कि 'जिस रास्ते से आप आ रहे हैं, उसी रास्ते में कुझ झाड़ियां थीं, जिनसे आने-जाने वालों को दिक्कत होती थी, वे उन झाड़ियां को साफ करते हैं।' वह व्यक्ति यह जानकर बहुत दुखी हुआ और वापस जाकर उसने दादू भगत से माफी मांगी कि मुझे माफ कर दो, मेरे से बहुत भूल हो गई। उस भक्त ने उसको यही कहा कि तेरे मन में एक अज्ञानता थी, उसी अज्ञानता के कारण तुमने ऐसा किया। अब जब तूने जान लिया है, तो तू आकर नमस्कार कर रहा है, इसलिये दोष तेरा नहीं अज्ञानता का है। अज्ञानता के कारण ही इन्सान भूल कर बैठता है और भटक जाता है, इन्सान को सच की पहचान नहीं हो पाती, इसलिये वह ऐसा कार्य करता है। जब उसे यह जानकारी हो जाती है, यह रोशनी प्राप्त हो जाती है, तो फिर एक सही मार्ग पर उसका चलन हो जाता है।

साधसंगत! गुरुमुखों, महापुरुषों में यही विशेषता होती है कि वे इस मालिक की पहचान कर लेते हैं, इस सत्य की पहचान कर लेते हैं। फिर संसार को भी इसी मार्ग पर चलाने की कोशिश करते हैं। ईश्वर हर एक इन्सान को एक प्रभु ईश्वर के साथ जोड़ने की कोशिश करते हैं। क्योंकि प्रभु के साथ जुड़ेगा तो दूसरों के प्रति वैर, ईर्ष्या मन से दूर होगी। अगर प्रभु की पहचान नहीं होगी, तो दूसरे इन्सानों को बेगाना मानेगा, दूसरे को नीचा मानेगा, दूसरे को अछूत मानेगा। ऐसा मानकर चलता रहेगा तो घृणा, वैर, क्रोध और अभिमान से भरा रहेगा और सेवा भी समान भाव से नहीं कर पायेगा। लेकिन इस ईश्वर, निराकार के साथ जब नाता जुड़ जाता है, जिस तरह से सूर्य के उदय होने से, इसके चमकने से, सारी चीज़ों का पता चल जाता है कि कौन सी चीज़ कहाँ पर पड़ी हुई है? लेकिन जब तक सूरज नहीं चढ़ता, तब तक अंधकार होता है और अंधकार हमारे लिये ठोकरों का कारण बनता है। अंधकार में भ्रम ही भ्रम हुआ करते हैं। एक रस्सी भी पड़ी हुई सांप नज़र आती है, हवा से हिलती हुई झाड़ियां भी बहुत भयानक, इन्सानों की शक्लों का रूप हमें नज़र आती है। लेकिन सूरज के उदय हो जाने से, रोशनी में आ जाने से, वो हकीकत, वास्तविकता जो है, वो हमारी आँखों के सामने

आ जाती है। इसी प्रकार से ये ज्ञान का उजाला हो जाने से ये भी हकीकत सामने आ जाती है कि कोई इन्सान बेगाना नहीं है, कोई ऊँचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है। किसी की जाति को ऊँचा माना जा रहा है, किसी की जाति को नीचा माना जा रहा है, ये सारे भ्रम दूर हो जाते हैं कि कोई जन्म से ऊँचा या नीचा नहीं हुआ करता। कोई किसी कुल में जन्म लेने से विशेष नहीं बन जाता। या किसी जाति में जन्म लेने से वह अछूत हो जाता है। यह तो एक ही परमात्मा के बनाये हुये बन्दे हैं। एक ही जैसे तत्व हर एक इन्सान के शरीर पर लगे हुये हैं और हर शरीर को चलाने वाली सत्ता भी इस निराकार का अंश है। जब इस हकीकत से वाकफियत हो जाती है, इसकी जानकारी हो जाती है, फिर यह किसी को बेगाना नहीं मानता और सबको निरंकार का रूप जानकर ही सेवा करता है।

इस प्रकार सेवा या भक्ति के लिये ज्ञान रूपी उजाले का होना बहुत ज़रूरी है। वास्तविक सेवा वही है, जिसमें कर्त्तापन का अहंकार और कोई कामना न हो। हनुमान जी ने राम जी की ऐसी ही सेवा की थी। भगवान राम के भरपूर आशीर्वाद उन्हें मिले। यही कारण है कि आज जितने मन्दिर हनुमाान के दिखाई देते हैं, उतने राम के भी नहीं। यह सब सद्गुरु की कृपा और हुक्म मानने से ही संभव होता है। जिस पर प्रभु प्रसन्न होते हैं, उसे ही सेवा मिलती है और सौभाग्यशाली भक्त ही उस सेवा का निर्वाह श्रद्धा और मर्यादापूर्वक ब्रह्मज्ञान से करता है।

मन के जीते जीत

साध संगत! जिस तरह से एक लालटेन के ऊपर कोई पतंगा, कोई कीड़ा बैठा हुआ है। उस पतंगे का अक्स, उसकी परछाई, सामने दीवार के ऊपर पड़ती है। अगर हम कहें कि उसी दीवार पर बैठे पतंगे को हटाना है और हम कोई झाड़ू ले लें, कोई सोटी (डंडा) ले लें या हाथ से ही उसे हम दीवार से हटाना चाहें, तो वह नहीं हटेगा, वह वहीं पर रहेगा। क्योंकि वह पतंगा दीवार पर नहीं बैठा हुआ है, वह लालटेन पर बैठा हुआ है। उसे लालटेन से हटायेंगे तो वह खुद–ब–खुद दीवार से भी हट जायेगा।

इसी तरह से जो भी लालसायें, तृष्णायें हैं, ये मन में बैठी हुई हैं। मन में ही अभिमान होता है, मन ही खचित होता है। बैठे कहीं होते हैं, यह मन कहाँ की सोच रहा होता है, कहाँ पर इसका ध्यान लगा होता है। महापुरुष इस मन को अर्पित करता है। हम चाहे कुछ भी अर्पित कर देते हैं, दान पुण्य भी कर देते हैं, लेकिन मन में अभिमान बना हुआ है, तो महापुरुषों ने कहा –

कबीर माइआ ताजी न किआ,
भाइआ जउ मानु तजि आ नहीं जाइ।।

अगर सब कुछ अर्पित कर दिया, लेकिन मन का ये अभिमान बना रहा, तो कुछ भी बनने वाला नहीं। हमें मन को समझाना है। अगर हम मन को अपने फर्ज़ों की अदायगी करते हुये एक प्रभु के साथ जोड़ लेते हैं, तो हम फिर भी निर्लिप्त रह सकते हैं, एक निर्लेप अवस्था वाले हो सकते हैं।

माया में मन ही फंसा करता है। शरीर तो खुद ही माया का पुतला है। इसीलिये सन्तों ने कहा है कि –

जो किछु किया सो मन कीआ मूंडा मूंडु आजाइ।।

अगर इस मन के ऊपर हम हावी नहीं, तो फिर यह ऐसे नाच नचाता है, जैसे बेलगाम का घोड़ा। जिस घोड़े के लगाम नहीं होती, वह घोड़ा हावी होता है और सवार उसके अधीन होता है, लेकिन जिसकी लगाम है और सवार का लगाम पर कंट्रोल है, तो फिर सवार हावी होता है और घोड़ा उसकी मर्ज़ी के मुताबिक चलता है। सांसारिक त्याग की भावना तो ऐसी है, जैसे यह कहना कि घोड़े से गिरने का खतरा होता है, अतः घोड़े की छुट्टी करो। लेकिन घोड़ा एक अच्छी सवारी भी है, घोड़ा हमारे कई काम भी करता है, उसे त्यागना नहीं है, घोड़े को कन्ट्रोल में रखना है। तभी महापुरुष कहते हैं कि यह ज्ञान समझो खम्भा है, और मन है बन्दर। बन्दर कहीं भी जा सकता है, लेकिन अगर ब्रह्मज्ञान रूपी खम्भे से बन्दर को बांध दो, तो वह बन्दर वहीं बैठ जाता है। मन को वश में करने के लिये ही हमें साधसंगत की आवश्यकता होती है। हमारा ध्यान इस दातार के साथ जुड़ा रहे। जब हम साधसंगत से दूर हो जाते हैं, तो यह मन भी पदार्थ की तरफ खिंचकर सांसारिक दृष्टि वाला बन जाता है। संतों की संगति मन को ऊँचा करती है, क्योंकि यहाँ पर ऊँची

मति प्राप्त होती है, ऊँची भावनायें हमें सीखने को मिलती हैं। संसार में तो मति को नीचे गिराना सिखाया जाता है, अभिमान करना सिखाया जाता है। जब ऐसी भावनायें मानव की बनती हैं, तो फिर यह मन भी उसी तरह की वृति रखने वाला बन जाता है। इसको फिर कष्ट सहना पड़ता है, इसकी बेचैनी बनी रहती है।

मन में प्रभु रहते हैं तो यह शांत हो जाता है, लेकिन जब इसमें संसार रहता है तो मन अशान्त होता है। लोग कहते हैं कि मानव खाली हाथ ही जग में आया और खाली ही चला जायेगा। खाली भले ही आया है लेकिन इस नाम धन को साथ लेकर जा सकता है। इस हरि–परमात्मा, इस लाल को साथ लेकर जा, जिसको प्राप्त करने से लोक भी सुखी हो जायेगा और परलोक भी सुहेला हो जायेगा। आज यहाँ से आपको यही एक आवाज़ सुनाई दे रही है कि ईश्वर ही जानने योग्य है, इसी को जानना है, इसी की पहचान करनी है। इसकी प्राप्ति के लिये तुझे कहीं वीरानों में नहीं जाना है, तुझे कहीं कन्दराओं में नहीं जाना है। भगवान कृष्ण जी जब अर्जुन को विराट स्वरूप दिखा रहे हैं, उसके सारे संशय मिटा रहे हैं, तो क्या भगवान कृष्ण जी अर्जुन को कहीं कन्दराओं में ले गये, या किसी पहाड़ की चोटियों पर ले गये? नहीं, जो भी गीता का उपदेश है, वहाँ जितने भी संशय मिटाये जा रहे हैं, जितनी भी अज्ञानता मिटाई जा रही है, जितना भी विराट स्वरूप दिखाया जा रहा है, वो उस कुरूक्षेत्र, यानि कर्म क्षेत्र में है। कई इन्सानों की मान्यता है कि वह कुरूक्षेत्र कोई स्थान थोड़े ही था, वहाँ कोई ऐसा जंग थोड़े ही हुआ था, ये तो सारा कुछ एक रूपक है। ऐसा भी अगर मान लें तो भी कुरूक्षेत्र को एक कर्म–क्षेत्र मानते हैं। यानि कि अर्जुन को कर्मक्षेत्र में रहते हुये इस विराट स्वरूप के दर्शन हुये।

एक इन्सान कहने लगा कि 'मैं एयरकंडीशन (वातानुकूलित) दीवार के साथ लगा हुआ था, फिर भी मुझे बहुत गर्मी लग रही थी।' दूसरा बोला, 'क्या ए.सी. बन्द था? खराब था?' वह बोला, 'नहीं जी, मैं तो कमरे के बाहर की तरफ दीवार के साथ लगा हुआ था, कमरे के अन्दर की तरफ नहीं।' उसका शरीर अवश्य बाहर की दीवार को छू रहा है, लेकिन ए.सी. तो कमरे के अन्दर लगा हुआ है। इसलिये सूरज की गर्मी तो उसे सतायेगी ही। इसी तरह भक्ति से नहीं, बल्कि अन्दर के प्रेम, मन के प्रेम से ही आनन्द मिलता है।

आज संसार में इस 'प्रियतम' का नाम तो लिया जाता है, सुबह–शाम इस नाम का उच्चारण भी किया जाता है, लेकिन जब तक मन में इसका निवास नहीं होता, मन की तार इसके साथ नहीं जुड़ती, तब तक भक्ति का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। जो भी इन्सान इस प्रभु का नाम लेता है, अगर वह नाम लेना केवल जुबान तक सीमित है, तो उसके जीवन में महानता नहीं आ सकती, क्योंकि जुबान से तो कई बार कोई भयानक दृश्य सामने आ जायें अथवा हालात ऐसे बन जायें, तो प्रभु–नाम निकल ही पड़ता है। इसी प्रकार कई बार कुछ लालसाओं की पूर्ति के लिये भी प्रभु का नाम लिया जाता है। इस प्रकार के कर्मों को भक्ति के अंग मानने वाले लोगों के लिये कहा गया है कि –

बाहरि गिआन धिआन इसनान।
अंतरि बिआपै लोभु सुआनु।।

भाव, है इन्सान! यह तो तू लोकाचार की बातें कर रहा है, यह वास्तविकता में सच्ची भक्ति नहीं है। यह जो तूने अपने देश में, व्याख्यानों से, लोगों को मोहित किया हुआ है, वश में किया हुआ है, इससे तू हरि की दरगाह में ऊँचा नहीं हो सकता। अगर हरि की दरगाह में तूने ऊँचा होना है, तो रोम–रोम में इसका साथ नाता जोड़ना होगा। हृदय की तार अगर प्रभु के साथ जुड़ी रहे, तो जीवन में उजाला बना रहता है। संसार में भी हम देखते हैं कि कोई तार लगी होती है, बल्ब लगा होता है, उसका कनैक्शन अगर विद्युत के साथ न जुड़ा हो तो वह उजाला नहीं देता। इसी तरह जब तक इस हरि दातार के साथ मन की तार नहीं जुड़ी होती, तब तक कुछ बनने वाला नहीं। जैसे एक माँ की प्रीति अपने बच्चे के साथ जुड़ी होती है। वह बच्चा भले ही स्कूल में, कहीं बाहर बोर्डिंग में अथवा विदेशों में गया हो, लेकिन माँ की ममता जानती है कि किस तरह से वह बच्चा उसके रोम–रोम में बसा हुआ है। इसी प्रकार यह मालिक, यह हरि परमात्मा भक्त के रोम–रोम में बसा होता है। भक्त आठों पहर इसका ध्यान करता है। कहा भी है –

उठत बैठत हरि भजहु साधु संगि परीति।
नानक दुरमति छुटि गई पारब्रह्म बसे चीति।

गुरसिख भले ही कहीं पर रहता है, उसके मन में गुरु का ध्यान रहता है। जिस तरह कमल का शरीर तो जल में ही रहता है लेकिन उसका मन,

उसका प्रेम सूर्य से ही होता है। मन को सद्गुरु के चरणों में लगाकर ही कोई महापुरुष कमल की तरह संसार में निर्लेप रह सकता है। अगर कोई कहे कि इसको (कमल को) पानी में से उठाकर किसी अच्छे कमरे में सजा दें, लेकिन उसके निर्लेप रहने की परख तो पानी के साथ है। अगर वह पानी में रहेगा ही नहीं, तो उसकी पहचान कहाँ रहेगी कि वह निर्लेप रह सकता है। वह तो पानी में रहकर भी निर्लेप रहता है। इसीलिये उसकी महानता होती है, क्योंकि उसके ऊपर सूरज होता है और वो सूरज की ओर आकर्षित रहता है। इसीलिये नीचे का पानी उसके ऊपर कोई असर नहीं करता। इसी तरह से भले ही भक्त धन–दौलत में रहते हैं, परिवारों में रहते हैं, फर्ज़ों की अदायगी करते हैं, लेकिन परिवार में रहते हुये भी इस प्रकार से इस प्रभु के साथ मन के द्वारा अपना सम्बन्ध जोड़कर रखते हैं, इस निराकार का आसरा हमेशा के लिये बनाये रहते हैं और एक अर्पण भाव से सब कुछ इस्तेमाल करते हैं कि दातार यह तन भी तेरा है, यह मन भी तेरा है, यह धन भी तेरा है –

कबीरा मेरा मुझ महि किछु नहीं जो किछु है सो तेरा।
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा।।

महापुरुष का मन अपने प्रभु के लिये इतना समर्पित होता है कि वह हमेशा यही कहा करता है –

मैं अन्धुले की टेक तेरा नामु खुन्दकारा।

कि हे दातार, तू ही मेरी टेक है, मेरा आसरा है, मेरा भरोसा है और इसी एक के ऊपर इनका विश्वास कायम हो जाता है –

तूं पिंजरु हउ सूउटा तोर, जमु मंजारु कहा करै मोर,
तूं जलनिधि हउ जल का मीनु, जल महि रहउ जलहि बिनु खीनु।।

ज्ञान की बातें तो बहुत इन्सान सुनते हैं, पढ़ते हैं और कहते भी हैं। यह ज्ञान का सन्देश आज ही नहीं दिया जा रहा, बल्कि इन्सानों को युगों–युगों से कहा जाता रहा है। लेकिन इसका लाभ उन्होंने ही लिया है, जिन्होंने इसको सुनकर अपने मन में स्थान दिया है, इसको अपने जीवन का अंग बना लिया है। जिन्होंने केवल एक कान से सुन लिया और दूसरे कान से निकाल दिया,

उनको कोई प्राप्ति नहीं होती है। बांस अगर ऐसे ही खाली हो, तो एक तरफ से फूंक मारेंगे और दूसरी तरफ से निकल जायेगी, लेकिन अगर उसको सही ढंग से बांसुरी का रूप दे दिया जाता है, तो फूंक मारने से उसमें से बड़ी अच्छी सुरें (स्वर) निकलती हैं, जिन्हें सुनकर बहुत आनन्द मिलता है। इसी तरह से हे मानव! दुनियावी पदार्थों के लिये तू सुनता तो है, लेकिन उनको तू दूसरे कान से निकाल नहीं देता, मन में बसा लेता है, लेकिन जिस भक्ति के मार्ग को अपनाने की आवश्यकता है, इसको तू दूर कर देता है, इसको तू अपनाता नहीं। जिस तरह से हज़रत ईसा मसीह जी ने भी कहा है कि कुछ बीज तो ऐसे स्थान पर गिरते हैं कि ऊपर ही ऊपर पड़े रह जाते हैं। नतीजा कि कुछ पंछी आते हैं, उस बीज को उठाकर ले जाते हैं। हमें कोई पौधा प्राप्त नहीं होता। एक भी पेड़ प्राप्त नहीं होता। लेकिन कुछ बीज उपजाऊ ज़मीन में गिरते हैं, जिससे हमें भरपूर दान प्राप्त होते हैं और हम मालामाल हो जाते हैं।

इसी तरह से इस हरि निरंकार रूपी बीज को जिसने अपने हृदय में पूर्ण तौर से गहरा स्थान दे दिया है, जगह दे दी है, उसको भी जीवन में एक ऐसी प्रफुल्लता प्राप्त होती है। ज्ञान–बीज से एक बड़ा पेड़ बन जाता है और हमें फल प्राप्त होते रहते हैं।

यह परिवार (निरंकारी मिशन) जो आपका बढ़ रहा है, इसमें कोई भी लालसा नहीं, कोई कामना नहीं कि बहुत बड़ी–बड़ी हाजिरियाँ हमने इकट्ठी करनी हैं। इसके पीछे एक ही उमंग है कि यह जो सत्य का पैगाम है, वह घर–घर तक, हर एक इन्सान तक पहुँचे, हर एक मानव तक पहुँचे। हर एक मानव का इससे कल्याण हो, हर एक की तृप्ति हो। सभी को सन्तोष प्राप्त हो।

निर्लेप जीवन

साधसंगत! संत संसार में रहते हुये निर्लेप जीवन जीते हैं। जैसे मुर्गाबी, जल में रहती है, लेकिन अपने पंखों को गीला नहीं होने देती। इसी प्रकार महापुरुष भी अपने जीवन का तार सदैव इस निरंकार दातार से जोड़े रखते हैं,

संसार की किसी चीज़ को, यहाँ तक कि अपने शरीर तक को भी अपना नहीं मानते, इसलिये यहाँ के सुख दुख का उन पर असर नहीं पड़ता है। वे 'मैं', 'मेरी' की भावना छोड़ कर सदा सुखी रहते हैं। जैसे एक बैंक का कैशियर होता है, लाखों के नोट संभालता है, लेकिन चाहे कोई हज़ारों रूपये ले जाये या हज़ारों जमा कर जाये, उसे सुख–दुख का अनुभव नहीं होता। इसी तरह संत महापुरुष भी संसार में रहकर अहंकार और मोह को छोड़कर एक निर्लेप जीवन जिया करते हैं।

संसार में जन्म लेकर भक्त भी यहीं विचरण करता है, इसी संसार में विचरण करता है। अगर हवा चलती है तो उसे भी ठंडक देती है। अगर सूरज चढ़ता है, उसकी गर्मी, तपश का उसके लिये भी यही असर है, जो और इन्सानों के लिये हुआ करता है। उसमें कोई अंतर नहीं। उसके लिये भी यही सृष्टि है, यही माया है, यही पदार्थ है और यही मौसम है। यह नहीं कि मौसम भक्तों के लिये कुछ और है, अन्य लोगों के लिये कुछ और है। सभी कुछ एक जैसा बनाया गया है, लेकिन जो फर्क है, एक महापुरुष और साधारण आदमी में, वह यह है कि संत संसार में रहता हुआ भी अपने मन में संसार का असर नहीं ग्रहण करता है। लेकिन जो एक सांसारिक इन्सान होता है, वह सारा ही सांसारिक असर ग्रहण करता है। उसके मन में भी संसार ही बसा हुआ होता है। जैसे पानी के ऊपर नाव चलती है, तो आगे बढ़ती है लेकिन जब पानी नाव में आ जाता है, तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। इस संसार में विचरण करते हुये सन्तों के जीवन में कोई उतार–चढ़ाव आदि, यदि आया है, तो उनके ऊपर असर इसलिये नहीं हुआ क्योंकि उन्होंने माया के पानी को मन की नाव में कभी नहीं भरने दिया, हालांकि वह पानी में ही चलते रहे हैं। इसलिये उनके ऊपर कोई असर नहीं हुआ। वरना इस पाँच तत्वों के पुतले पर माया का असर होना स्वाभाविक ही होता है। अगर तन पर वस्त्र नहीं है, तो ठंडक या गर्मी उसको भी लगेगी ही। सब अपना असर करते ही हैं, लेकिन जैसे दास ने अभी कहा कि अगर पानी के ऊपर ही नाव चलती रहती है, तो वह डूबती नहीं। आगे की ओर ही बढ़ती रहती है। नाव में पानी अगर प्रवेश कर जाता है, तो वह डूब जाती है। संसार में यही कुछ हो रहा है। संसार में प्राणी रहते हैं, विचरण करते हैं। इस धरती पर आये हैं तो रहना ही है, लेकिन एक ही मुश्किल आकर खड़ी होती है। जब मन में भी यह संसार ही बस जाता है, ये पदार्थ ही बस जाते हैं, ये धन–दौलतें ही बस जाती हैं,

लालसायें, कामनायें ही बस जाती हैं, तब जानो कि जीवन–नैया डगमगा रही है, डोल रही है।

संत सदैव से अपना ध्यान निरंकार दातार पर रखते हैं, संसार पर नहीं। संसार में, माया में रहते हैं, व्यवहार भी करते हैं, लेकिन दिल से प्यार परमात्मा से ही करते हैं। जैसे माँ दिन भर काम करती है, रसोई में काम करती है, बाज़ार जाती है या कुछ और कार्य कर रही होती है, लेकिन उसका ध्यान अपने बच्चे की ओर ही निरंतर रहता है। इसी प्रकार भक्त भी प्रभु को आठों पहर हृदय में बसा कर रखते हैं। इस प्रभु को सदैव दिल में बसाकर ही अपने कर्त्तव्यों का पालन भी करते हैं। तभी उन्हें हम कर्मयोगी संत कहते हैं। ये कर्मक्षेत्र से भाग नहीं जाते। प्रभु दातार ने घर दिया, जीवन दिया तो इनको बंधन का कारण मानकर, भक्त कहीं भाग नहीं जाते। अक्सर संसार को भ्रम लग जाता है कि प्रभु को भी तभी याद कर सकते हैं, प्रभु की भक्ति हम तभी कर सकते हैं, जब हम इन सभी बन्धनों से छुटकारा पा सकें। सभी बन्धनों का कारण मन में 'मैं, मेरी' की भावना है कर्म नहीं। महापुरुषों ने हमेशा कर्म को महान माना है। अर्जुन जब कर्म से मुख मोड़ना चाहता था, भगवान श्रीकृष्ण ने उसे यही ज्ञान प्रदान किया, और उसे कर्मयोग को अपनाने की प्रेरणा दी। इसी तरह जितने भी महापुरुष भक्त इस संसार में आये, उन्होंने कर्म से मुख नहीं मोड़ा। यह इन्सान का भ्रम है कि मैं यदि जंगलों वीरानों में जाकर डेरे लगा लूं, परिवार से नाता जोड़ लूँ, तो सबसे छुटकारा प्राप्त करके, मैं शान्त हो जाऊँगा। यहाँ तो मुझे क्रोध भी आ जाता है, यहाँ तो लालच भी आ जाता है, यहाँ तो और कई विकार भी हावी हो जाते हैं, तो वहाँ सभी से छुटकारा मिल जायेगा। लेकिन साध संगत! यह ठीक नहीं। क्योंकि किसी महात्मा ने गृह त्याग का मार्ग नहीं बतलाया। हाँ, गृहस्थ में रहते हुये भी आसक्ति (ATTACHMENT) का त्याग ज़रूर होना चाहिये।

गुरु साहिब अपनी प्रचार यात्रा करते हुये जंगलों से गुज़र रहे थे। वहाँ एक इन्सान आँखें बन्द करके समाधि लगाये बैठा हुआ था। महात्मा उसके पास गये। जब वह समाधि से बाहर आया, आँखें खोलीं तो उससे पूछा कि 'आप यहाँ पर क्या कर रहे हैं?' वह कहने लगा कि 'मैं यहाँ पर प्रभु प्राप्ति के लिये सभी बंधनों को छोड़कर आया हूँ। जब मैं परिवार में था, तो सब विकार मुझे सताते थे। अब न मुझे लालच है, न क्रोध है। कुछ भी तो नहीं, अब मैं बहुत शांत हूँ। महापुरुष ने समझाया कि 'यह कोई महानता नहीं।

महानता तो तभी है जब इन्सान अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये शांत रहे। यह तो कोई भक्ति नहीं, बहादुरी नहीं। वह कहने लगे कि नहीं, मैंने अपना सही अनुभव बतलाया है। इतनी देर में उसने फिर आँखें बन्द कर लीं, समाधि में चला गया। जो महात्मा उसे समझा रहे थे, उन्होंने उसके आगे से लोटा उठाकर थोड़ी दूर पेड़ के नीचे रख दिया। जब वह समाधि से बाहर आया, आँखें खोलीं तो क्या देखा कि सामने जो लोटा था, वह नहीं है। उसी वक्त गाली–गलौच शुरू हो गई। कहने लगा कि जिसने मेरा लोटा चुराया है, उसका सर्वनाश हो जाये, उसका कुछ न रहे। जितना कह सकता था, कह दिया। तब महात्मा ने मुस्कुरा कर कहा कि अभी थोड़ी देर पहले तू कह रहा था, कि मेरा क्रोध समाप्त हो गया है, लेकिन एक लोटा ही आँखों से ओझल होने पर तुझे इतना क्रोध आ गया है। तू निर्लेप कहाँ हुआ है?

वास्तव में महानता उसी की है, जो सभी कर्मों को निभाता हुआ, निर्लेप अवस्था में रहता है। जैसे कमल का फूल पानी में रहता है, जल में रहता है। जल में रहकर भी उस जल से न्यारा रहता है, उसकी निर्लेप अवस्था रहती है। कोई समझाने के लिये कहे कि कमल के फूल को अगर निर्लेप रहना है तो उसे उठाकर किसी कमरे में बन्द कर दीजिये, किसी खास स्थान पर रख दीजिये। तब वह खुद पानी से निर्लेप हो जायेगा। अगर पानी ही नहीं है, तो निर्लेप किससे होगा? उसके निर्लेप रहने की परख तो तभी होगी जब वह पानी में रहकर निर्लेप रहकर दिखायेगा। वह पानी में मौजूद रहे, तभी तो मालूम पड़े कि वह कितना निर्लेप रह सकता है? इसी तरह भक्तों की, महापुरुषों की भावना रही है। भक्त इस समाज में रहे हैं और अपने फर्ज़ों को निर्लेप रहकर निभाते रहे हैं। वे चाहे किसी युग में संसार में आये, उन्होंने कर्मों से मुख नहीं मोड़ा। वे अपने परिवार में रहे और हर प्रकार के कर्त्तव्यों की पालना की और यह सब कुछ करते हुये भी उनकी निर्लेप अवस्था बनी रही।

एक राजा और रानी थे। दोनों को ध्यान आया कि माया को छोड़कर कहीं चले जायें। दोनों चल दिये, तो रास्ते में राजा की नज़र एक सोने के टुकड़े पर पड़ी। ज्यों ही उसने सोने का टुकड़ा देखा, फटाफट मिट्टी उठाकर उसके ऊपर डाल दी, ताकि वह सोने का टुकड़ा दिखाई न दे। रानी ने उसे मिट्टी डालते हुये देख लिया। उसने पूछा कि यहाँ आप क्या कर रहे थे? राजा बोला, यहाँ पर एक सोने का टुकड़ा पड़ा था, मैंने सोचा कि अगर आपकी

नज़र सोने के टुकड़े पर पड़ गई तो ये सोना देखकर आपको लालच आ जायेगा, इसलिये मैंने ऊपर मिट्टी डाल दी है। रानी ने कहा कि 'आपको यह सोना देखकर अभी भी ध्यान है कि यह सोना है, मैं तो इसे पहले ही मिट्टी मान चुकी हूँ।' इसी तरह भक्त महापुरुष सभी पदार्थों को इस्तेमाल भले ही करते हैं, लेकिन मिथ्या मानते हुये उनमें गलतान नहीं हो जाते।

निर्लेप जीवन में अहंकार बड़ी बाधा पैदा करता है, क्योंकि अक्सर इन्सान को भ्रम हो जाता है कि शायद मैं खुद ही अपना तथा अपने परिवार का पालन–पोषण कर रहा हूँ। अक्सर कह भी दिया जाता है कि 'दाने–दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम', लेकिन दास तो ऐसा मानता है कि 'दाने–दाने पर लिखा है देने वाले का नाम।' दान देने वाला जो प्रभु–दातार है, अगर इसकी कृपा न हो तो इन्सान के सामने भले ही अनेक पदार्थ पड़े रहें, उनमें से एक छोटा–सा कौर भी उठाकर मुंह में नहीं डाल सकता। भक्त हमेशा दातार की कृपा को ही मानते हैं। अगर कोई व्यापार करता है, तो भी ऐसा ही मानता है कि दातार अगर दिन में बीस–पच्चीस ग्राहक भी आ गये हैं, तो वे मेरे किसी यत्न के कारण नहीं, बल्कि तू मुझे रोजी–रोटी देना चाहता है, इसलिये कोई न कोई रूप धारण कर तू ही मुझे रोजी–रोटी देने चला आता है। भक्तों की दृष्टि हमेशा से ही ऐसी रही है। लेकिन संसार का इन्सान अज्ञानतावश खुद कर्त्ता बन बैठता है। वह सोचता है कि मैं ही करने वाला हूँ, सब कुछ मेरे तन की ताकत के कारण हो रहा है, मेरी अक्ल, सयानप के कारण हो रहा है, या फिर मेरे धन के कारण हो रहा है। ये सभी भ्रम की बातें होती हैं। जैसे अगर एक गाड़ी चल रही है, तो कोई इंजन या कोई घोड़ा या बैल उसको खींच रहा होता है। अगर उस गाड़ी के पहिये पर कोई मक्खी बैठी हो और थोड़ा–थोड़ा ज़ोर भी लगा रही हो, और वह सोचने लगे कि पहिया मेरे जोर लगाने से चल रहा है, तो यही उसकी भूल ही है। इसी तरह कुदरत सभी काम निरंकार की शक्ति से कर रही है। इन्सान तो खुद को कर्त्ता मानकर अपने आपको बेकार ही अहंकार में फंसा लेता है। अहंकार को हटाने पर माया का प्रभाव, माया का असर, माया का लेप खत्म हो जाता है।

जब तक इन्सान अपनी 'मैं' को कायम रखता है, तब तक उसे उसका असर भी ग्रहण करना पड़ता है तथा जब इस 'मैं' को हटा देता है तो उस पर कोई असर नहीं होता, वह यश–अपयश से ऊपर हो जाता है। सुख–दुख में

एकरस रहता है तथा इस निराकार का आसरा लेकर अपने आपको निराकार में ही समा देता है।

अपने आपको निराकार को अर्पण कर देने से ही सहज अवस्था बन पाती है, मन के विकार स्वयं ही दूर होने लगते हैं, भेदभाव मिट जाते हैं, जाति–पाति की दीवारें टूट जाती हैं, भाषा की दीवारें टूट जाती हैं। फिर कोई पराया नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था बन जाने के बाद किसी से वैर करने का कोई आधार नहीं रह जाता। क्योंकि घृणा तो उतनी देर ही होती है, जितनी देर किसी को पराया माना जाये। जब कोई पराया ही नहीं, तो घृणा किससे की जाये? हम अक्सर देखते हैं कि हमारे कमरे में बहुत कीमती सामान पड़ा होता है, बहुत अच्छा कागज़ दीवार पर लगा होता है। हमारा अपना बच्चा पेंसिल लेकर उस पर कुछ लकीरें लगा रहा होता है तो हमें थोड़ा गुस्सा आता है, हम उसे डांटते हैं तथा समझाते हैं कि ऐसा नहीं करते, लेकिन अगर किसी पड़ोसी का बच्चा हमारे कमरे में आकर कुछ लकीरें लगाता है, तो हमें उस पर केवल गुस्सा ही नहीं आता, बल्कि हम उससे घृणा भी करने लगते हैं कि कितना नालायक है, इसके माता–पिता ने क्या इसे यही सिखाया है? कहने का भाव, जितनी देर परायेपन की भावना है, बेगानेपन की भावना है, उतनी देर घृणा का जन्म लेना स्वाभाविक ही है, लेकिन जब परायेपन की भावना समाप्त हो जाती है, तो वहाँ पर कोई बैर या घृणा की भावना नहीं रहती। सबको प्रभु का मानेंगे, तो घृणा किससे कर सकते हैं?

भक्त ने सदा सब कुछ इस दातार, इस प्रभु–परमात्मा को ही माना है कि हे दातार, तेरी ही सब वस्तुयें हैं। तू ही दाता है, तू ही देने वाला है। मेरा तो है ही क्या, जो मैं इन चीज़ों का असर ग्रहण करूँ। यह तो तेरी ही वस्तुयें हैं, तू ही मालिक है। इसलिये भक्त बेफिक्र हो जाता है और कोई बोझा अपने पर कभी नहीं लेता –

चिन्ता तो सतनाम की, और न चितवे दास।
जो कुछ चितवे नाम बिन, सोई काल की फांस।।

इस नाम के बगैर भक्त को और चिन्ता नहीं होती। अगर भक्त नाम को छोड़कर और चीज़ों की चिन्ता करता है, तो वह काल की फांस की तरह

उसके गले को जकड़े रहती है, उससे उसके सांस सूखते रहते हैं। इसलिये कहा है कि –

एकल चिन्ता।

भक्त इस एक प्रभु की चिन्ता (सोच–विचार) करते हैं, किसी और की चिंता नहीं रखते। साधसंगत! इस ईश्वर–प्रभु–परमात्मा, इस निराकार को ही कर्त्ता मानकर सब कुछ इसी को ही मानकर, जिस–जिस ने भी जीवन व्यतीत किया है, वही सुखी हो गया है, वही आनन्दित हो गया है। *जिनको कुछ नहीं चाहिये, सोई शहनशाह।* जिसके मन में कोई लालसा नहीं, वही सबसे बड़ा शहनशाह हुआ करता है, वही भरपूर हुआ करता है, वही अपने आपको संतुष्ट मानते हैं। निर्लेप जीवन जीने वालों की यही अवस्था हुआ करती है।

लोग अपने पद, विद्याओं और जातियों के अभिमान के कारण भी भक्ति नहीं कर पाते। जितने भी महापुरुष हुये हैं, क्या उन्होंने अपनी जाति का अभिमान किया? किसी ने भी जाति का अभिमान नहीं किया। किसी ने अपने आप को विद्वान नहीं माना कि मैं बड़ा विद्वान हूँ, मैं तो कविताओं की रचना करता हूँ, मैं तो सुन्दर शब्दों का प्रयोग करता हूँ। दूसरे इन्सान तो ऐसा कर ही नहीं पाते। कभी भी किसी महापुरुष ने ऐसा अभिमान नहीं किया। उन्होंने हमेशा इस दातार की कृपा ही मानी है –

ना कुछ किया, न कर सकूं न कुछ करे शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, हुई कबीर कबीर।।

हे दातार! सब तू ही करने वाला है, आप तो मेरा यश कराना चाहते हैं, मेरा नाम कराना चाहते हैं। इसलिये ही मेरा नाम हो जाता है। तेरे कारण ही मेरी यश–कीर्ति हो रही है।

भक्त और महापुरुष कभी भी अपनी मर्ज़ी नहीं चलाते। संसार के मनुष्य तो केवल अपनी मर्ज़ी ही चलाने की कोशिश करते हैं। लेकिन भक्तों की विशेषता यह बताई जाती है कि भक्त सब कुछ हमेशा इस दातार के ऊपर ही छोड़ते हैं। अपनी मर्ज़ी के बजाय दातार की मर्ज़ी को अहमियत देते हैं। ये भी एक हकीकत है कि यहाँ अपनी मर्ज़ी से होने वाला भी क्या है?

इन्सान अपने सर की कसम खाता है, तो हज़रत ईसा मसीह ने कहा है, हे इन्सान तू सर को तो अपना बता रहा है, पर तुझे इसमें अख्तियार क्या है? अपने सर पर एक बाल भी सफेद होने से तू रोक सकता है क्या? तुझे तो इतना भी अख्तियार नहीं। फिर इस सर में तेरा क्या है, जिसकी कसमें खाता है। ये सब कुछ दातार का है, इस दातार के सहारे ही सब कुछ चलता है, उसी का जीवन सरल और सहज बन जाया करता है। इसी को ही निर्लेप अवस्था वाला कहा जाता है, इसी को कमल के फूल की तरह बताया जाता है कि इस संसार में रहता हुआ भी वह इस संसार से न्यारा रहता है। वह हर घड़ी उतार–चढ़ाव में, सुख–दुख में दातार की ही रज़ा मान रहा होता है और ऐसी दशा को प्राप्त करके वह निरन्तर अपने मार्ग पर ही चलता जाता है। अहंकार का भार ही जीव की नैया डुबो देता है। कहा भी है –

कबीर बेड़ा जरजरा, फूटे छेंक हज़ार,
हरूए–हरूए तिरि गये, डूबे जिन सिर भार।।

जिनके सर पर भार है, वे तो डूब जाते हैं, जो इस संसार में आकर, नाम, हरि की प्राप्ति कर लेते हैं, उनका पार–उतारा हो जाया करता है। ये पार उतारा कैसे होता है? जब इस मालिक, इस मूल के साथ हमारा नाता जुड़ जाता है, इस ईश्वर के साथ नाता जुड़ जाता है, इस मालिक को हम अपने मन में स्थान दे देते हैं, तब हमारी आत्मा का कल्याण हो जाता है। इस प्रभु को मन में स्थान दिया, तो आत्मा की अज्ञानता दूर हो गई और आत्मा ने अपने मूल की पहचान कर ली।

दातार ने सारी वस्तुयें गुज़रान के लिये दी हैं। जिस तरह से रेलगाड़ी में सफर करते हैं। कोई 8 घण्टे सफर करता है, कोई 20 घण्टे। कोई उससे भी ज़्यादा अरसा सफर करता है। लेकिन जब वह गाड़ी से उतरता है, तो मायूस नहीं हो जाता कि मैंने इतने घंटे गाड़ी में सफर किया, इस गाड़ी से तो मैं उतर रहा हूँ उसको तो मैं छोड़ रहा हूँ। उसके मन में कोई निराशा की भावना नहीं होती। क्योंकि वह जानता है कि यह गाड़ी तो एक ज़रिया है और थोड़े अरसे के लिये इस्तेमाल करने के लिये मिली है। यह देह भी जीवन की गाड़ी ही तो है।

एक तरफ जिसको हम निजी सम्पत्ति मान लेते हैं, उसको छोड़ते हुये, एक तरफ रखते हुये, हम सोचते हैं कि हमसे तो बहुत बड़ी चीज़ कोई खो गई है, हम से अलग हो गई है। हम अपने आप को परेशान और दुखी मान लेते हैं। दूसरी तरफ एक सरकारी गाड़ी इस्तेमाल करना है, जिसे हम किसी और दृष्टि से देखते हैं। उसमें लिप्त नहीं होते। संत महापुरुष का ऐसा ही निर्लेप जीवन होता है।

गुरुमुख (महापुरुष)

महापुरुष तो सबको दिल से प्यार करते हैं। उनका प्रेम शरीर की भावना से नहीं, निरंकार (आत्मतत्व) की भावना से होता है। ऐसी ही भक्ति हमेशा से महापुरुषों भक्तों ने की है। उन्होंने इस प्रभु–परमात्मा के साथ हृदय से प्रेम किया, लोगों को दिखाने के लिये नहीं किया और न ही सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये इस प्रभु की प्राप्ति की है, क्योंकि वे जानते हैं कि भक्ति के द्वारा ही सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति नहीं होती। ये तो उनको भी प्राप्त हो जाती है जो डाके डालते हैं, चोरियाँ करते हैं, बुरे काम करते हैं। उनके पास शायद धन–सम्पत्ति ज्यादा हो –

सुत दारा और लक्ष्मी पापी के भी होए।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।।

जो पापी हैं, बुरे काम करने वाले हैं, उनको भी ये वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन दुर्लभ वस्तु सन्त समागम है। महापुरुषों की संगति ही दुर्लभ है।

महात्मा कभी भी भौतिक पदार्थों का सहारा नहीं लेते। इनका यथोचित उपयोग करते हुये भी वे प्यार परमात्मा से ही करते हैं। महापुरुषों–सन्तों का एक यही निराकार परमात्मा ही आसरा हुआ करता है। यह एक ऐसा नाम का दारू (दवा) है जो हम सब के रोगों को दूर कर देता है, इन रोगों से मुक्त कर देता है –

ओ सतिगुर प्रसादि, हरि को नामु सदा सुखदाई।

जा कउ सिमरि अजामलु उधरिओ मन कोहू गति पाई।।

यह नाम अमृत हमेशा के लिये सुख देने वाला है। दुनिया की जितनी चीज़ें हैं वो हमेशा एकरस नहीं रहा करतीं और इन चीज़ों का असर भी बदल जाया करता है। इनका उपयोग एक समय पर तो सुखदायी होता है, और एक समय पर इसी चीज़ का उपयोग दुखदायी बन जाता है। हम जानते हैं कि दूध इस शरीर को ताकत देता है। लेकिन अगर किसी को दस्त लगे हुये हों तो डॉक्टर हमेशा मना करता है। कहता है कि दस्त हैं, आप थोड़े दिन दूध मत पिओ। दुनिया के पदार्थों के अलग–अलग इस्तेमाल, अलग–अलग उसके असर हैं। लेकिन हरि के नाम के बारे में कहा है – सदा सुखदाई। सुख में सुख देने वाला और दुःख में भी यही सुख देने वाला है। इसको जिसने भी मन में बसा लिया है, इसका आधार ले लिया है, वही वास्तव में सहज अवस्था का आनन्द लेता है। गुरमुख महापुरुष का सद्गुरु पर विश्वास इतना पक्का और दृढ़ होता है, कि किसी भी हालत में डिगता नहीं –

कबीर संतु न छोड़ै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत।
मलिआगरू भुयंगम बेठिओ त सीतलता न तजंत।।

भाव जैसे चंदन का पेड़ अपनी शीतलता को नहीं छोड़ता, इसी तरह संत भी गुरमत को नहीं छोड़ता, परोपकार का त्याग नहीं करता। अगर संसार का पार उतारा हुआ है तो ऐसी भावना रखने वाले महापुरुषों के द्वारा ही हुआ है। इसीलिये कहा है कि ये धरती तो साधु की है, धरती तो सन्तों की है, लेकिन तस्कर इस पर बैठे हुये इसको बिगाड़ रहे हैं। यह धरती ऐसे लोगों, ऐसे पापियों का बोझ सहन नहीं कर सकती। यह धरती फिर भी थमी हुई है, किसलिये? क्योंकि सन्त भी इस धरती पर हैं। सन्तों की बदौलत यह धरती थमी हुई है।

सन्त न होते जगत में, तो जल मरता संसार।

साधसंगत! देखने वाले को तो नजर आ रहा है चारों तरफ आग लगी हुई है। देश में लगी हुई है, विदेशों में लगी हुई है। चारों ओर वैर, ईर्ष्या की भावनायें कार्य करती हैं, लेकिन गुरमुख महापुरुष जहाँ बीच में आ जाता है, वहीं पर शीतलता हो जाती है। आगे इस अग्नि को बढ़ने के लिये कोई

रास्ता ही नहीं मिलता। शायद इसलिये संसार के लोग महापुरुषों को अपने रास्ते की रूकावट मानते हैं। वो मानते हैं कि ये प्रेम की, मानवता की बातें करते हैं, ये भाई-भाई को अपनाने की बात करते हैं, लेकिन हमने जाति का सहारा लेकर जो सत्ता हथियानी है, हमें वोट या कुर्सी हासिल कर लेनी है, तो अब यह कैसे होगा? हमने गाँव की प्रधानगी तो जाति के सहारे पर लेनी है या धर्म के नाम पर लेनी है। ये तो हरेक को समान दृष्टि से देखते हैं, हर एक को यही बताते हैं, कि सारे मानव प्रभु के बन्दे हैं, ये तो हमारे रास्ते में रुकावट है। इसलिये संसार में महापुरुष के साथ वैर, ईर्ष्या, नफरत होती रही है, लेकिन सन्त फिर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं। जिस तरह भले ही सांप लिपटा हो, चन्दन का पेड़ अपनी महक देता ही रहता है।

इसी तरह से कोई गंगा के किनारे खड़ा हो और बड़े गुस्से और ज़ोर-ज़ोर से बड़े-बड़े पत्थर उस गंगा की तरफ, पानी की तरफ, फेंकने शुरू कर दे, तो जो पानी में पत्थर फेंक रहा है, गंगा का जल क्या उसके लिये नहीं है? वो फिर भी जल दिये जा रही है। हर एक की प्यास, हर एक की मैल फिर भी मिटती जा रही है। संतों का जीवन भी ऐसा ही होता है।

साधसंगत! कहने का भाव, गुरमुख महापुरुष-सन्तों के पास शीतलता होती है। सन्त अपना सन्तों वाला स्वभाव नहीं छोड़ते, चाहे करोड़ों असन्त क्यों न मिल जायें। क्योंकि ऐसे स्वभाव से ही शान्ति प्राप्त होती है, ऐसे गुणों से ही मन में चैन रहता है, ऐसे गुणों से संसार के जो पापी हैं, उनका भी पार उतारा हो सकता है, उनका भी उद्धार हो सकता है। आप महापुरुष धन्य हैं, जिन्होंने इस मालिक, इस निरंकार के साथ नाता जोड़ा है। तभी तो ऐसे गुणों का जीवन में प्रवेश हुआ है। जब तक परमात्मा के साथ नाता नहीं जुड़ा था, तब तक हम अपने मनों को खोज लें, कि क्या जब से हमने इस प्रभु की प्राप्ति की, गुरमुख महापुरुषों की संगति हुई, तब के और पहले के जीवन में अन्तर नहीं आया है? क्या इसमें कोई फर्क मालूम नहीं पड़ा? पहले हमारी दृष्टि कितनी तंग हुआ करती थी और हम किस तरह संकीर्ण दायरों से बंधे हुये थे। आज वे दायरे टूट चुके हैं, आज हम हर एक का भला चाहते हैं। हर एक का भला करते हैं। गुरमुख-महापुरुषों के साथ नाता जोड़कर, इस ईश्वर निरंकार की प्राप्ति करके, निरन्तर दास बनके ही जीवन में तब्दीली आ जाया करती है।

महापुरुष खण्डन–मण्डन और वाद–विवाद से बच कर रहते हैं। वे तर्क या दलील भी दूसरे महापुरुषों के सामने अक्सर नहीं देते। जैसे एक इन्सान बैठा हुआ सफर कर रहा था। उसके मुंह में सिगरेट लगा हुआ था। ऊपर धूम्रपान न कीजिये (NO SMOKING) का साइन बोर्ड लगा हुआ था। अटेण्डेन्ट ने आकर कह दिया, 'भाई साहब आप पढ़ नहीं सकते? यहाँ पर 'नो स्मोकिंग' का साईन बोर्ड लगा है। आपको तो उसे देखकर रूकना चाहिये।' वह सज्जन बोला, 'मेरे मुंह में सिगरेट अवश्य है, लेकिन मैंने जलाई तो नहीं, वो तो मेरे मुंह में ऐसे ही पड़ी है।' अटैण्डेंट कहने लगा, 'ये अपने मुख में डाली तो है।' वो आगे से दलील देता है। 'ऐसे तो मैंने जूते भी पहने हुये हैं, इसका मतलब यह तो नहीं कि मैं चल रहा हूँ।' कहने का भाव यही है कि उस वक्त दलील देकर अपने आपको बचाने की कोशिश की और साबित कर दिया कि वह कोई गल्ती नहीं कर रहा। लेकिन वह कोई 'टॉफी' नहीं थी, जो उसने मुख में डाली थी। वह उसने डाली थी तो पीने के लिये ही, हालांकि बाहर की माचिस अभी नहीं जली थी, लेकिन अन्दर मन में वह माचिस कब की जला चुका था। वह धुआं कब का चलना भी शुरू हो चुका था। लेकिन बाहर वह सिगरेट वाला धुआं अभी शुरू नहीं हुआ था। कहने का भाव यही है कि दलील से इन्सान कभी–कभी सत्य को छिपाने का यत्न करता है।

गुरमुख गाय की तरह होता है और मनमुख सांप की तरह। जैसे गाय को हम घास डालते हैं। कई बार घास मिल जाती है, कई दफा हरी घास नहीं भी मिलती है। सूखी घास उसको दे दी जाती है। तब भी गाय हमें दूध ही देती है। दूसरी तरफ सांप को कटोरे में डालकर हम दूध भी दे दें, तब भी हम जानते हैं कि उनके पास तो विष है। वह दूध पी के भी डंक ही लगाता है, क्योंकि उसके पास जो है, वही उसने देना है।

गुरमुख महापुरुषों को हमेशा दूसरों की सहायता करने वाला ही माना जाता है। वे दूसरे का बोझ बांटने वाले माने जाते हैं। उनके सहारे अनेकों–अनेकों का भी पार उतारा हो जाता है। जैसे कील बहुत तीखी होती है। उसको हम किसी लकड़ी में गाड़ देते हैं, तो वह सुराख कर देती है। नुकसान कर देती है। अगर उसको पानी में फेंका जाये तो वह पानी में डूब जायेगी और बच नहीं पायेगी। लेकिन उसी पानी में अगर एक लकड़ी का शहतीर तैर रहा है, उसके ऊपर अगर उस कील को रख दिया जाता है तो उस

शहतीर के सहारे उस कील का पार उतारा भी हो जाता है। इसी प्रकार महात्माओं के सहारे से मनमुख भी तर जाते हैं।

माया के इस अहंकार में आज इन्सान का पहचानना ही मुश्किल हो गया है कि भक्त कौन–सा है और शैतान कौन–सा है? ज्ञानी कौन–सा है, अज्ञानी कौन–सा है? लेकिन जब उसका कर्म या व्यवहार हमारी आंखों के सामने आता है, हमारे लिये उनके कर्म ही मार्ग–दर्शक हो जाते हैं। पहचान का साधन बन जाते हैं।

साधसंगत! सन्तों महापुरुषों ने हमेशा इन्सान को सुमति प्रदान की है, ऐसा विवेक प्रदान किया है कि इन्सान सोच–समझ सके कि कांटों के रास्ते पर चलने से तो चुभन ही महसूस होगी, दुख ही महसूस होगा और अगर फूलों के मार्ग पर चलेंगे तो महक प्राप्त होगी, आनन्द ही प्राप्त होगा। संसार कांटों को उठाकर बिखेर भी रहा है, जिससे कोई वहाँ से गुज़रे तो उनको वे कांटे कष्ट दें। लेकिन महापुरुष सन्त कांटे बिखेरते नहीं, बल्कि कांटे समेटने का काम करते हैं। उनको यह विधि प्राप्त होती है, उनके पास एक ऐसा रहस्य होता है, जिससे वे सबको सुख देते हैं। इस सच के साथ नाता जोड़ने से, इसको हर पल, हर हाल में समर्पित होने से, ऐसा एक साधन ये गुरमुख महापुरुष बता दिया करते हैं, कि वही सबके लिये सुख का साधन बन जाता है। वरना परमात्मा के साथ नाता जोड़कर उसकी अहमियत महापुरुष खुद भी समझता है तथा औरों को भी समझाकर सुखी कर देता है। जैसे बिच्छू डंक मारना नहीं छोड़ता और सन्त उसे बचाने का परोपकार नहीं छोड़ते। इसी तरह गुरमुख अपना परमार्थ का मार्ग नहीं छोड़ते, भले ही मनमुख उन्हें नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहें।

महापुरुष कहते हैं कि हे इन्सान, पशु, पक्षी भी अपना कार्य नहीं छोड़ते, लेकिन तू ही अपने कार्य को छोड़ देता है, तू ही हमेशा भटका है। इसलिये किसी वेद, किसी शास्त्र, किसी ग्रन्थ, किसी महापुरुष की रचना में किसी परिन्दे को सम्बोधित करके नहीं कहा गया कि घोड़े!! तू घोड़ा बन जा। पशु! तू पशु बन जा। नहीं, वे उन योनियों वाले होकर भी कार्य करते जा रहे हैं। जब भी कहा गया इन्सान को ही कहा गया है कि हे इन्सान! तू इन्सान बन जा। क्योंकि यह अपने मार्ग पर रहता ही नहीं। इसलिये कहना पड़ता है कि तू इन्सान बन जा।

एक तो बैरी वे हैं, जो हम बाहर देखते हैं, बाहर से दुश्मन नज़र आते हैं, लेकिन कई दुश्मन हमारे अन्दर भी निवास करते हैं, जिनको हम क्रोध का नाम दे देते हैं, कामना का नाम दे देते हैं, लोभ का नाम दे देते हैं। ये अन्दर भी हमारे दुश्मन हैं। इनके ऊपर भी काबू करना है। किसी सन्त ने पूछा कि 'बताओ सबसे ज़्यादा बलवान कौन होता है?' किसी ने कहा, 'एक पहलवान जिसके शरीर में बहुत ताकत होती है।' किसी ने कहा कि 'सिपाही जो सरहद की हिफाज़त करता है।' इसी तरह से बारी-बारी से सभी ने बताया। लेकिन एक सन्त कहता है कि 'सबसे बहादुर तो सन्त होता है।' किसी ने पूछा, कैसे? तो उसने बताया, 'इसमें कोई शक नहीं कि जो सरदह की हिफाज़त करता है, उसकी बहुत कदर है, सम्मान है, लेकिन हम जानते हैं कि बरसों बीत जाते हैं तब कभी कोई जंग होती है, और वास्तविकता में तो एक फौजी दूसरे से ही लड़ता है। लेकिन सन्त की जंग हर पल लगी रहती है। ये जो काम रूपी, क्रोध रूपी, अहंकार रूपी पहलवान हैं, इनको दबाये रखने में हर पल से लड़ता रहता है। एक का अगर दबाता है तो दूसरा अपना सिर उठा लेता है। काम को दबाता है तो क्रोध खड़ा हो जाता है। क्रोध को दबाते हैं तो लालसा खड़ी हो जाती है। आठों पहर की इसको सम्भालना पड़ता है और यह एक बहुत बड़ी बहादुरी का काम है।'

साधसंगत! ये जो अन्दर बैठे हुये हमारे दुश्मन हैं, जिनको रोग भी कहा जाता है, इन रोगों से हर कोई बच सकता है। अगर अपने मन में इस ईश्वर निरंकार को बसा लें, आठों पहर इसका ध्यान करें, सबके साथ एक-सा प्रेम भरा व्यवहार करता हुआ, प्रभु के साथ नाता जोड़कर इस दातार प्रभु ईश्वर, परमात्मा को समर्पित होकर यह जीवन समर्पित करता जाये, तो इन बैरियों को जीत लेता है।

इस संसार को दुखों का घर कहा गया है। लेकिन इसी संसार में भक्तों ने विचरण किया है। महापुरुष जब-जब भी इस धरती पर अवतरित हुये, जब-जब भी उन्होंने इस धरती पर जन्म लिया, चाहे इस मुल्क में लिया, चाहे किसी और मुल्क में लिया, किसी स्थान पर भी जन्म लिया, हर एक जगह पर इसी तरह का पसारा था, इसी तरह से माया का अपना खेल था। इसी तरह से सेनायें अपनी जंग लड़ रही थीं। इसी तरह से धन-दौलत, इसी तरह से परिवार में निवास हो रहा था। सभी कुछ इसी तरह था और इसी में

महापुरुषों ने निवास किया। लेकिन एक फर्क रहा है। वह यह है कि नाव पानी में चलती है तो मुबारिक है, लेकिन अगर पानी नाव में आ जाये तो हम जानते हैं कि नुकसान ही नुकसान हुआ करता है। सन्त भी संसार में रहते तो हैं, पर संसार को मन में नहीं आने देते।

सभी मानव जिस तरह इस संसार में बसते हैं, महापुरुष भी उसी तरह से बसते हैं। लेकिन फर्क जैसे दास ने अभी बताया है, एक नाव का पानी में चलना और एक पानी का नाव में आ जाना। सांसारिक इन्सान रहता भी इस जग में है, और मन में भी यही जग, यही संसार बसा के रखता है। लेकिन महापुरुष रहता तो भले ही इसी संसार में है, लेकिन मन में इस संसार को नहीं बसने देता। मन में इस निराकार, इस ईश्वर को बसाता है। यही उसके सुख का एक सबसे बड़ा कारण है। यही सबसे बड़ा आनन्द का कारण है।

जो सन्त–महापुरुष है, जो वास्तव में भक्त होते हैं, वे आग लगाने का काम नहीं करते, वे तो आग बुझाने का काम किया करते हैं। उनके पास शीतलता होती है, उनके पास किसी का नुकसान करने का साधन नहीं होता और इसी में महानता होती है। वे गिराने के मार्ग पर नहीं चलते, उठाने के मार्ग पर चलते हैं। गिरने वाला सोचता है मैं बड़ा बहादुर हूँ, लेकिन युगों–युगों से ये नियम स्थापित हो चुका है कि बचाने वाला ही हमेशा महान गिना जाता है। ज़ख्म किसी भी चीज़ से पहुँचाया जा सकता है, लेकिन ज़ख्म भरने वाले क्या हमें घर–घर मिल सकते हैं? हर एक गली में मिल सकते हैं? नहीं। ऐसा नहीं होता। एक गांव में किसी को चोट लग जाती है, तो शहर की तरफ भागता है। शहर में भी पूछता है कि यहाँ कोई डॉक्टर साहब हैं? तो जवाब मिलता है कि आगे चले जाइये, अगले मुहल्ले में चले जाइये। वहाँ पर तुम्हें अस्पताल या डॉक्टर मिल जायेगा।

कहने का भाव, ज़ख्म भरने वाले हमें गली–गली में नहीं मिलेंगे, क्योंकि यह एक महान कार्य है, जिसे करने वाले विरले हुआ करते हैं। एक कपड़े को टुकड़े–टुकड़े करने में कोई ज़ोर नहीं लगेगा। एक बच्चे को कैंची दे दीजिये, वो मिनटों में उसके कई टुकड़े कर देगा। लेकिन इतने टुकड़ों को एक सैकेण्ड या मिनट में सिला नहीं जा सकता। उसकी सिलाई में बड़ी मेहनत लगती है, उसमें बड़ी कारीगरी दिखानी पड़ती है।

महापुरुषों में आखिर ये गुरमत के गुण आते कहाँ से हैं? ये गुण हमेशा सन्तों के साथ रहने से, उनकी सेवा में ही मिलते हैं। साधु की संगति हमेशा हमारे में ऐसी महानता भर सकती है, हमारे मनों में एक अमृत का रस भर सकती है, हमारे जीवन में गुण प्रवेश करा सकती है। लेकिन ज़रूरत यही है कि एक समर्पित भाव से, गुरमुख महापुरुषों से अपना नाता जोड़े, कहीं पर बीच में फिर कोई अभिमान रूपी दीवार आ गई, कोई ऐसा पर्दा आ गया, तो फिर हम कंचन बनने में वंचित हो जाया करते हैं। साधसंगत! इस साधसंगत का प्रताप हमेशा से गाया जाता है।

भक्त की यही चाह रहती है कि मुझे महापुरुषों की संगति मिलती रहे और चाहे संसार में किसी भी तरह से विचरण करना पड़े, किसी तरह से भी चढ़ाव-उतार आ जायें, जैसा भी खाने को मिल जाये, चाहे जौ की भूसी ही क्यों न खाने को नसीब हो, लेकिन कभी मनमुख की संगति न मिले। हमेशा गुरमुखों की संगति ही मिलती रहे, क्योंकि गुरमुखों की संगति ही हमारे विश्वास को परिपक्व करती है, हमारा इस परमात्मा के ऊपर अकीदा बना देती है। फिर कभी हम भटकते नहीं हैं और हम सद्मार्ग पर चलते रहते हैं। हम सत्य की डगर पर चलते जाते हैं। साधसंगत का ही प्रताप होता है कि हमारी बुद्धि विवेक-बुद्धि बन जाती है। उसको पता चल जाता है कि बुरा क्या है, भला क्या है? फिर यह बुराई के रास्ते पे चलना बन्द कर देती है, और भलाई के रास्ते पर ही चलती है। साधसंगत! इसके बगैर कभी भी इन्सान का कल्याण नहीं हुआ है। इन्सान का कल्याण तभी हुआ है, जब इसको ऐसी बुद्धि मिली है, ऐसी सुमति मिली है। यह सुमति महापुरुषों की संगति करके मिलती है।

महापुरुष फरमाते हैं कि -

जो जाने आपस को नीचा, सो ही गनिये सब ते ऊँचा।

भाव, जो अपने को नीचा मानता है, वही सबसे ऊँचा, सबसे महान माना जाता है। उसका नाम सन्तों-महापुरुषों की श्रेणी में आ जाता है। पूजने योग्य हो जाता है। वह अभिमान नहीं करता, क्योंकि अभिमान से सभी को घृणा होती है। संसार का इन्सान अगर किसी हाई पोस्ट (उच्च पद) पर लगा होता है तो वह जहाँ भी चर्चा करता है, 'मैं, मैं' की ही चर्चा करता है, कि मेरे में इतनी ताकत है, मैं यह कर सकता हूँ। इसी प्रकार किसी को कोई

मान–बढ़ाई मिल जाती है, तो उसे भी 'मैं' खाने लगती है। ऐसे ही किसी को मान होता है, अच्छी रचना करने का, गीतकार बनने का, लेकिन जब तक इन्सान में 'मैं, मैं' की भावना रहती है, तब तक उसकी कद्र नहीं होती, उसका नाम नहीं होता, भले ही वह किसी जाति से ताल्लुक रखने वाला हो या कितनी डिग्रियां हासिल कर रखी हों। गुरमुखों ने क्योंकि नम्रता को अपनाकर रखा है, इसलिये इनका सहज ही सत्कार होने लगता है, इनके वचनों को संसार पढ़ता है, उनको महानता देता है।

हम पुरातन महापुरुषों के जीवन को देखें तो उनमें हमें कहीं भी अभिमान दिखाई नहीं देता। सभी तरह के गुणों से भरपूर होते हुये भी, उन्होंने कभी अपने आप को बड़ा नहीं माना, अपने को नम्रता में रखा, अपने को दासों का दास बनाया। हम देखते हैं कि एक झरना बहता है, ज्यों–ज्यों वह नीचे की ओर बहता है, त्यों–त्यों वह विशाल सागर की ओर बढ़ता है, विशालता को प्राप्त होता है। इसके विपरीत जो पानी ऊँचाई पर ही टिक जाता है, ठहर जाता है, तो उसमें बदबू आने लगती है, वह बीमारी पैदा करने वाला हो जाता है। इसी प्रकार हम इस दातार के साथ तभी एकाएक हो सकते हैं, जब हम अभिमान को त्याग कर हर प्रकार से नम्रता को अपना लेते हैं। जो इंसान सन्तों–महापुरुषों की धूलि में अपने आप को न्यौछावर कर देता है, उसका नाम हमेशा ऊँचा बना रहता है। वह हर प्रकार के सुख प्राप्त करता है। जो अभिमानी होता है, वह खुद भी जलता है, और दूसरों को भी जलाता है। जो नम्र भाव में रहने वाला होता है, वह दूसरों को भी महक देता है और खुद भी शीतल रहता है। दुनिया में भी उसकी पूजा होती है और दरगाह में भी उसे मान–बड़ाई प्राप्त होती है।

गुरुमुख किसको कहा जाता है? असल में ये दो साधारण से शब्द हैं। एक 'गुरु' तथा दूसरा 'मुख'। जिसका मुख गुरु की ओर होता है, उसे गुरुमुख कहा जाता है। किसी के साथ धोखा नहीं करना, फरेब नहीं करना, किसी के हक के ऊपर कब्जा नहीं करना, कभी झूठ का सहारा न लेना। यही गुरुमुखों की पहचान है।

इतिहास हमारे सामने है। जिसने भी तलवार का सहारा लिया, जुल्मो–सितम के बल पर कहा है कि दूसरा इन्सान भी मेरी इबादत शुरू कर दे, उसको हमेशा औरंगज़ेब की तरह ज़ालिम ही कहा जायेगा, और जिसने सत्य

के उसूलों के लिये कुरबानियाँ दीं, उसे हमेशा गुरु तेग बहादूर जी की तरह महान कहा जायेगा। उसे ही बहादुर कहा जायेगा। उसी को मान–शोहरत मिलेगी। किसी समय या युग की तबदीली के कारण इस सिद्धान्त में अन्तर नहीं आया करता। जो महानता महापुरुषों के साथ जुड़ी होती है, वह हमेशा जुड़ी रहती है। किसी ताकत से, किसी अन्य कर्म से, उस महानता को सत्य से दूर नहीं किया जा सकता।

अमृतसर से जो महापुरुष आये, वे बता रहे थे कि रैयया में संगत करते हुये जिन बहनों–बच्चों पर पिछले रविवार को बम फैंका गया, उनमें ऐसी ही चर्चा चल पड़ी, कि अब अगले रविवार संगत कैसी होगी? क्योंकि, ज़्यादा महापुरुष तो ज़ख्मी हालत में है, बाकी तो थोड़े से ही महापुरुष हैं। तो वे सभी, जिन्हें चोटें लगी हुई थीं, कहने लगे कि हमने तो संगत पर जाना ही है। यह जो मांस का टुकड़ा, शरीर है। इसे चोट पहुंचाकर भले ही कोई इसे सत्य से दूर करना चाहे, लेकिन यह जो विश्वास है, आत्मा इस मालिक के साथ जुड़ी हुई है, यह मन जो इसके ध्यान में लगा है, इसे कोई ताकत भी डोलायमान नहीं कर सकती। इसे गुरु से, साधसंगत से दूर नहीं कर सकती। ऐसे विश्वास उन महापुरुषों के बने हुये हैं, जिन पर शेष गुरमुख भी गर्व करते हैं।

साध संगत! जो महापुरुष वहाँ नहीं रहते, उनके दिलों में भी ऐसा विश्वास हो, उन महापुरुषों से वे भी यही प्रेरणा लेते रहें कि उनका कितना महान योगदान है, जिस तरह से इस सत्य के उसूलों पर टिके हुये हैं तथा हमेशा इसी की ही चर्चा करते हैं। आज ज़रूरत भी यही है कि हर महापुरुष इन उसूलों पर टिका रहे, गुरमत के रास्ते को अपनाकर रखे। हम कई दफा कहते हैं कि ऐसा होना चाहिये। यह बात खत्म हो जानी चाहिये, लेकिन जो गुरमत की मर्यादा है, प्यार–नम्रता है, जिसमें दूसरे गुरसिख का आदर–सत्कार है, सेवा भाव है, वह सब कुछ भी तो होना चाहिये। जब तक हम इसमें आगे नहीं बढ़ेंगे, एक दूसरे गुरसिख पर विश्वास कायम नहीं रखेंगे, जब तक दूसरे को साध संगत के साथ नहीं जोड़ेंगे, तब तक मन की अवस्था दूसरी तरफ ही लगी रहेगी। निन्दा–बखीली करना, दूसरे महापुरुष की बुराई करना कभी भी गुरमुखों का कर्म नहीं रहा। वास्तव में ऐसे महापुरुष के कारण ही संसार बचा करता है, जो अपने असूलों पर सदैव कायम रहते हैं। गुरमुख महापुरुष कभी भी अन्धविश्वासों में नहीं पड़ते। यह नहीं कि बिल्ली आगे से निकल गई है,

तो इसका आगे बढ़ना रुक गया है। कोई छींक आ गई है, तो ये आगे नहीं बढ़ेगा। ये सारी अज्ञानता की निशानियां हैं। अन्धविश्वास भ्रान्ति से होता है। एक लड़के की जब शादी हुई और नई बहू जब घर में दाखिल हुई, तो उसने देखा कि उसकी सास ने एक बिल्ली के ऊपर टोकरी रख दी है। समय व्यतीत होता गया। उसके भी बच्चे हुये। जब उसने भी अपने बच्चे की शादी रचाई और बहू घर में दाखिल होने लगी तो उसने अपने नौकर से कहा कि एक बिल्ली लेकर आ। बिल्ली लाई गई। एक टोकरी भी मंगाई गई और बिल्ली के ऊपर टोकरी उल्टी करके रख दी गई। उसने यह केवल अपनी सास को करते देखा था और यही मान लिया कि ये कोई शादी की रस्म है। शादी के अवसर पर जब नई दुल्हन घर में दाखिल होती है तो एक बिल्ली मंगाकर उसके ऊपर टोकरी रख देना आवश्यक है। तभी ये सारी रस्में पूरी गिनी जायेंगीं।

यह एक अज्ञानता थी। अज्ञानता के कारण उसने देखा और इसी को करना शुरू कर दिया, जबकि उसकी सास ने बिल्ली के बार-बार तंग करने से, उसके ऊपर टोकरी रख दी थी। साधसंगत! इसी तरह से स्थान-स्थान पर यह अज्ञानता देखी जाती है। इन्सान इसी अज्ञानता में पड़ा हुआ अपने जीवन के विकास को रोक दिया करता है। यह जहाँ खड़ा है वहाँ खड़ा न होकर पतन की तरफ बढ़ जाता है। पीछे की तरफ चलना शुरू हो जाता है। महापुरुष ऐसे चक्करों में कभी पड़ते ही नहीं।

जिसको इस निरंकार की, इस परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है, जिसको ब्रह्म की अनुभूति हो जाती है, वह वास्तव में उजाले में जीवन व्यतीत किया करता है और एक सच्चे गुरमुख महापुरुष की तरह अपने जीवन में तन-मन-धन की सेवा करता हुआ परोपकार के मार्ग पर चलता रहता है। ऐसे गुरमुख महापुरुषों के चरण छूकर धरती भी पवित्र हो जाती है। भक्त जो भक्ति करता है, वह किसी और के लिये नहीं, बल्कि अपने लिये ही करता है। अपने लिये भक्ति करने का अर्थ यह नहीं कि वह खुदगर्ज़ हो जाता है या उसकी भक्ति में संकीर्णता होती है। भक्ति में तो उसे सबका ही भला मांगना होता है। सबके लिये सुख मांगना होता है, लेकिन वह जो भक्ति कर रहा है, वह अपने लिये कर रहा है। उसका लाभ उसे ही मिलता है। पानी जो अपने शरीर पर गिरा रहा है, उसका अपना शरीर ही साफ होता है, उसका अपना शरीर ही ठण्डक पा रहा होता है। अपने नहाने से किसी दूसरे का शरीर साफ

नहीं होता। इसी तरह से जो भक्ति करता है, वह वास्तव में अपना जीवन ही ऊँचा बनाता है। उसके अपने जीवन में ही निखार आता है। यद्यपि भक्त दूसरों का हित करता है, परन्तु उसकी भक्ति से उसे ही सुख मिलता है, उसे ही आनन्द मिलता है।

इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये प्रभु की कृपा आवश्यक है। व्यक्ति जब तक सद्गुरु की कृपा का पात्र नहीं बनता, तब तक जाति–पाति, धर्म–मज़हब की सीमित चारदीवारी के बन्धन में होता है। फलस्वरूप विवाद होते हैं। लेकिन विशाल समुद्र के समान महान सद्गुरु की कृपा से ऊपर उठकर संत महापुरुष बादलों के समान गुरु और परमात्मा के ऐसे कृपा पूर्ण अमृत वचनों की वर्षा करते हैं, जो सभी वाद–विवादों से ऊपर होते हैं।

महात्मा का जीवन बादल के समान होता है। यह किसी प्रान्त, देश, जाति–पाति, धर्म–मज़हब की सीमाओं को नहीं मानता। इसी कृपा सभी पर समान रूप से बरसती है। यह किसी प्रकार का बन्धन नहीं मानता, पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है।

जिस प्रकार समुद्र की गहराई का नापना असम्भव है और उसमें से उठने वाले विभिन्न स्थानों पर वर्षा करते हैं, ठीक उसी प्रकार गुरसिख गुरु कृपा से जितना भी चाहे अमृत वचनों की वर्षा करे, पर गुरु की गइराई का पता लगाना असंभव है। सद्गुरु भी सागर की तरह गहरा और आसमान के समान विशाल होता है। यह किसी के गुणों–अवगुणों की तरफ नहीं देखता। जो भी सरल हृदय, निष्कपट, श्रद्धा भावना से सद्गुरु के पास जाता है, सद्गुरु उसके अवगुणों को क्षमा कर देता है। संसार में जीवनयापन के लिये चतुरता की आवश्यकता पड़ती है, जबकि सद्गुरु से आध्यात्मिक विद्या प्राप्त करने के लिये चतुरता और विद्वता काम नहीं आती। इसमें सरलता और भोलापन ही काम आता है। परमात्मा को सरलता और भोलापन ही प्रिय है।

साधसंगत! यह जो जीवन की यात्रा हम तय कर रहे हैं, इसमें इस ईश्वर, इस मालिक की हमेशा याद बनाये रखें। इसको मन में बसाये रखें। लेकिन मन में तो तभी बसेगा, इसकी मूरत तभी बसेगी, जब इसकी पहले पहचान करेंगे। जानकारी हासिल करेंगे। मान लिया, एक बहन है, उसके अभी सन्तान नहीं हुई है। हम उसको जितने मर्जी आदेश उपदेश देते रहें कि

आप बच्चे का ध्यान किया करो, उसकी खुराक का ध्यान किया करो, ठीक समय पर उसको दूध देना है, लेकिन वो किससे प्यार करे? किस बच्चे को अपने मन में बसाये? बच्चा तो अभी सामने आया ही नहीं। उसी तरह से प्रभु-परमात्मा की सूरत हम अपने मन में बिठायेंगे, इसको स्थान देंगे कब? जब हम पहले इसे देख लेंगे। जिस इन्सान को हमने देखा ही नहीं, उसकी शक्लो-सूरत अपने मन में नहीं बसा सकते।

कुछ वर्षों पहले उत्तर प्रदेश जाने का अवसर मिला। वहाँ एक पत्रकार ने अनेक सवाल पूछे। उनमें एक यह भी सवाल कर दिया कि आप हर एक को महापुरुष कहते रहते हैं। युगों-युगों से इस धरती पर चन्द महापुरुष हुये हैं। जिनके साथ महापुरुष शब्द जोड़ा गया है। परन्तु आप तो जो भी उठता है, उसको ही महापुरुष का सम्बोधन करते रहते हैं। आप इस महापुरुष वाले शब्द की कीमत क्या कम नहीं कर रहे?

दास ने उस सज्जन के सामने अपनी भावना रखी कि ये तो इस अमोलक दात को प्राप्त करने के कारण उस महानता का वर्णन करते हैं। लेकिन महापुरुष शब्द जब इस्तेमाल किया जाता है तो उसके साथ यह भी बात जुड़ी है कि जिस-जिस को महापुरुष कहा जा रहा है, उसने इस शब्द की लाज रखनी है कि मुझे महापुरुष कहा जा रहा है, तो वास्तव में मेरा वैसा कर्म भी है या नहीं?

दास ने उस सज्जन से यह भी कहा कि दिन रात जिसे 'महापुरुष-महापुरुष' कहा जाता है उसे दिन रात अपने कर्त्तव्यों का ख्याल भी रखना है। एक बार सूखा पड़ा। सूखे का काफी ज़िक्र हो रहा था। चारों तरफ पानी की कमी नज़र आ रही थी। कुछ शहरों में जाने का मौका मिला तो वहाँ पर पूछा कि भाई साहब, यहाँ तो तालाब है। वे बोले, 'तालाब तो बहुत मशहूर है लेकिन उसमें पानी नहीं।'

साधसंगत! कहने का भाव, एक तालाब, सरोवर या नदी है, उसे तालाब या नदी तो कहा जाता है लेकिन अगर उसमें पानी नहीं होगा तो उससे प्यास कौन बुझायेगा? इसी तरह से हमें जो ऐसा सम्बोधन मिला है, तो हमसे वे गुण भी औरों को मिले, शीतलता भी प्राप्त हो। हमारे व्यवहार के द्वारा अमृत भी प्राप्त हो। जो गुरमुख महापुरुष होते हैं, वो हमेशा प्रेम के साथ जीवन

व्यतीत करते हैं। उनके जीवन में प्रेम होता है, वे औरों को प्रेम ही देते हैं। अगर मानव इस संसार में आकर उलझ जाता है तो उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है –

मैं फूल चुनने आया था बागे – हयात में।
दामन को खार ज़ार में उलझा के रह गया।।

जो लोग यहाँ आते हैं, उनको ये बागे़ हयात नज़र आता है। ये न महसूस हो कि यहां कहीं कांटों ने भी दामन पकड़ लिया है। यहाँ से तो फूल ही फूल मिलने चाहिये, यहाँ से तो सुगन्धि ही सुगन्धि मिलनी चाहिये। एक प्रेम के ही सभी भूखे हुआ करते हैं, प्रेम ही सब के मन में प्यास हुआ करती है।

बाहर के मुल्कों में माया का बड़ा बोलबाला है। कितना वहाँ पैसे का प्रभाव है। वहाँ संगत में बैठे ही बैठे विचार आया कि बाहर के मुल्कों के साथ हमने ये माया का प्रभाव तो जोड़ दिया है, ज़रा अपने घर में भी देख लिया करें कि क्या माया यहाँ पर असर नहीं करती? यहाँ पर भी करती है, घरों में भी करती है, मुहल्लों में भी करती है। माया तो पूरा असर दिखा रही है। चाहे यहाँ का देश हो या बाहर का देश हो।

महापुरुष सेवा, सुमिरन जैसे कार्यों का अहंकार भी नहीं करते। जब हम सिमरन करते हैं, तो इस निराकार को कैसे ऐसे जपना है कि हृदय से प्रभु की महिमा हो, तभी हम गुरु का भी मान सकते हैं। हम अक्सर गुरु के शरीर से भय मानना शुरू कर देते हैं कि गुरु देख रहा है, गुरु खड़ा है। तभी हमने काम करना है। गुरु का शरीर ऐसे दायें बायें हो गया है, तो हमने भी लापरवाह हो जाना है। नहीं, गुरु को हमने क्या शरीर मान लिया है? गुरु शरीर नहीं हुआ करता। हर समय भय मन में हो तभी भक्ति पूर्ण हो सकती है। गुरु को हम हर वक्त घट–घट में देखें, हाज़र–नाज़र देखें, तभी हम सही मायनों में इस भक्ति के रास्ते पे चल सकते हैं। तो इस तरह से भक्तों का इस निराकार की तरफ ध्यान लगा होता है। इस तरह से ये अपने मन से प्रभु की अराधना करते हैं। आप संतजन महापुरुष इसी तरह से इस दातार का आसरा लेते हुये, निराकार की महिमा गाते हुये तथा हमेशा महापुरुषों की संगति करते हुये, अपने जीवन को महान बनाते चलें और बिना किसी लालसा को मन में रखे हुये सेवा की भावना, सत्कार की भावना, गुरसिख के बच्चों से भी डरकर, इस भक्ति को अपना कर और हर एक का

सत्कार करके, भक्ति के मार्ग पर आखिरी स्वासों तक चलकर गुरमत को निभा सकें। जैसे कहा है कि –

पाणी भरन पनहारियां रंगा–रंग घड़े।
भरया तिस का जाणिये, जिस का तोड़ चढ़े।।

यह प्रीत आखिरी स्वासों तक इस तरह से निभाई जा सके –

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाये।।

प्रेम का धागा तोड़कर पहले तो जोड़ने में मुश्किल आती है। अगर जुड़ भी जाता है तो एक गांठ पड़ जाती है। यह गांठ देखने वाले को अखरती है। यही दातार से अरदास है कि हर एक गुरमुख महापुरुष की आखिरी स्वासों तक इस परमात्मा के साथ प्रीत जुड़ी रहे, गुरमुखों महापुरुषों से नाता जुड़ा रहे।

सन्तों के वचन ध्यान से सुनकर उनका जीवन में पालन करना, उन्हें मानना, महापुरुषों का मुख्य कार्य होता है। गुरमुख महापुरुषों के महान वचन हमारे जीवन को निर्देश देते हैं। एक ऐसा रास्ता बताते हैं कि हमें किस तरह से चलना है, किस तरह के हमारे विचार हों, किसी तरह से हम लेन–देन करें। किस तरह से कदम–कदम पर इस काजल की कोठरी (संसार) में चलना तथा कादर (स्वामी) के साथ जुड़ जाना और फिर निर्लिप्त रहना है, यह महापुरुष हमें याद दिलाते हैं और कदम–कदम पर यही बताते हैं। अगर महापुरुषों का संग ही नहीं होगा, तो हमें याद कौन करायेगा? इसलिये महापुरुषों की संगति आवश्यक हुआ करती है। महापुरुषों की संगति से हमारी यह मैल धुल जाती है। महापुरुषों के वचन निर्मल होते हैं, वे हमारे मन को भी निर्मल कर देते हैं तो महापुरुषों की संगति ही गुरसिख हमेशा चाहता है और साकत की संगत से कतराता है। साकत की संगति से बचाता है –

कबीर संगति करिये साध की अंति करै निरबाहु।
साकत संगु न कीजिये जा ते होइ बिनाहु।।

संत महापुरुषों का प्रत्येक कार्य अभिमान से मुक्त होता है और विश्वास पर टिका होता है। प्रहलाद भक्त के बारे में हम जानते हैं कि किस तरह

उनका विश्वास डोलायमान करने की कोशिश की गई। लेकिन प्रभु–परमात्मा का आसरा कायम रखा। आठों पहर इसका ध्यान बनाये रखा। उनका पिता तथा बुआ अभिमान के कारण भक्त प्रहलाद को डोलायमान करने की कोशिश करते रहे। होलिका कहती थी कि मुझ पर आग का असर नहीं होता, मैं प्रहलाद को लेकर आग में बैठ जाऊँगी। मैंने तो बच ही जाना है और प्रहलाद जल जायेगा। लेकिन वह अभिमान करने वाली खुद जल गई और भक्त प्रहलाद बचा रहा। कहने का भाव यह है कि अभिमान ऐसी आग है, जो ऋषि–मुनियों को भी नहीं छोड़ती। जैसे हम देखते हैं कि आग कभी भेदभाव नहीं करती। वह कभी नहीं सोचती कि मैंने झोंपड़ी को तो जला देना है, लेकिन लाखों–करोड़ों की बनी इमारत को नहीं जलाना। आग का काम तो जलाना है और वह जलाती है। इसी प्रकार यह अभिमान अज्ञानी को तो हो ही जाता है, लेकिन अगर ज्ञानी को भी हो जाये तो उसके नतीजे उसे भी भुगतने पड़ते हैं। इसीलिये इस अभिमान रूपी बीमारी को दूर करना है।

कभी एक गुरसिख दूसरे का हृदय न दुखाये, किसी को बुरा भला न कहे। हर वक्त मीठे वचन ही बोले और उसका कर्म ऊँचा हो। यह कर्म की महक ही गुरमुखों के जीवन से निकलती रहे। यह कर्म की महक ही संसार में बांटते रहें। फूलों की जिस क्यारी में से सुगन्धि आ रही होती है, खुशबू आ रही होती है, तो हमारा दिल करता है कि हम थोड़ी देर वहाँ रुक जायें, बैठ जायें, यहाँ बहुत अच्छी महक आ रही है। लेकिन जहाँ बदबू होती है, गंदगी का ढेर लगा होता है, हम कहते हैं कि यहाँ से भाग जाना अच्छा है। हम अपने नाक पर कपड़ा रखकर अपनी नाक को बंद कर लेते हैं। कहने का भाव कि गुरमुखों महापुरुषों का ऐसा जीवन बने, जिसमें से महक ही महक आये ताकि संसार का जो इन्सान है वह महापुरुषों के पास ठहरना पसन्द करे, कुछ पल रुकना पसन्द करें ताकि महापुरुषों के जीवन से लाभ उठा सके। ऐसी ही कामना है, यही दातार से अरदास है। यह महक तभी बन सकती है, जब हम हमेशा दूसरों के गुणों को देखेंगे, दूसरों के गुणों की चर्चा करेंगे और अपने अन्दर देखते रहेंगे कि हमारी क्या अवस्था है।

गुरमुख सन्त इस संसार में एक निराला जीवन जी के दिखाता है। इसी में ही उसकी महानता हुआ करती है। यह महानता जिसके साथ जुड़ जाती है, उसी को महापुरुष कहा जाता है। उसकी ही ऊँची भावनायें होती हैं और वो ऊँची भावनायें उत्तम ज्ञान के कारण होती हैं। जब कर्म ऊँचा होता है तो इसी

ऊँचे ज्ञान के कारण, इस सोझी के कारण ही होता है। जिस तरह एक बर्तन है, जिसमें मूल्यवान वस्तु पड़ी होती है। उस बर्तन की भी बहुत कद्र बढ़ जाती है। उस बर्तन का भी मूल्य बढ़ जाता है। हमारे घरों के आंगन में अनेक ऐसे बर्तन पड़े रहते हैं, जैसे टीन के डिब्बे इत्यादि। लेकिन जिस डिब्बे या बर्तन में घी होता है, शक्कर होती है, जिसका बाज़ार में बहुत अधिक मोल है, जिसमें ज़्यादा पैसा लगता है, ऐसी वस्तुओं को हम कभी खुले आंगन में नहीं छोड़ देते। उसको बहुत संभाल कर अलमारियों में रखते हैं। इसी तरह से इन्सानों के शरीर एक जैसे ही हुआ करते हैं। एक डाका डालने वाले का शरीर, एक कानून की रक्षा करने वाले का शरीर, एक अपराध करने वाले का शरीर, एक सद्मार्ग पर चलने वाले का शरीर। इन शरीरों में तो कोई फर्क नहीं होता।

महापुरुष के ऊपर साधु वारे-वारे जाते हैं। गुरु भी अपने आप को न्यौछावर कर देता है। उसकी महिमा हमेशा-हमेशा बनी रहती है। उसका नाम हमेशा कायम रहता है। यह काम वह इसलिये नहीं करता कि इसको कोई शौहरत हासिल करनी है कि उसका कोई नाम हो जाये, पत्रिकाओं में छप जाये या कहीं और उसकी चर्चा होनी शुरू हो जाये। वह ये सब कर्म करते हैं, उत्तम कर्म मानकर, उसको अपना फर्ज़ मानकर। जिस तरह से हम भोजन करते हैं तो किसी को दिखाने के लिये नहीं करते हैं।

जो यह मानता है कि मैं तो बहुत पूर्ण हो गया हूँ, मैं तो बहुत पुरातन हो गया हूँ, मेरा बड़ा नाम है, मुझे बहुत पोज़ीशन मिली हुई है, तो ऐसा अगर वो मान रहा है तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल है। अगर अपने आप को मान लिया कि मैं तो भरपूर हूँ, तो फिर उसमें क्या भरेगा? उसने और आगे क्या सीखना है? सीखता तो वही है, जो सीखने की भावना रखता है। उस बर्तन में तो तभी डाला जायेगा यदि वो आप को सम्पूर्ण न मानेगा। दास अक्सर सोचता है कि हर एक में क्या सम्पूर्णता है? कोयल जैसी मीठी आवाज़ हमारे कानों में पड़ती है तो हम सोचते हैं, ये आवाज़ जिस मुख से निकल रही है, उसके चेहरे की भी अधिक सुन्दरता होगी। लेकिन नज़र जाती है चेहरे के ऊपर, तो चेहरा इतना खूबसूरत नहीं होता। आवाज़ बहुत ही मधुर होती है। कई ऐसे खूबसूरत चेहरे हैं, जिनकी आवाज़ कोई सुनना पसन्द नहीं करता। वे सुर में ही नहीं गा सकते हैं। हो सकता है, शक्ल-सूरत भी अच्छी हो और गला भी अच्छा हो, लेकिन क्या ज़रूरी है कि उसमें कवि होने का भी गुण

होगा। क्या वह कोई रचना भी खुद लिख सकेगा? कहने का भाव यही है कि दातार ने हर इन्सान में गुण भरे हुये हैं। देखना है तो गुणों की तरफ। अगर गुण जो सामने दिखाई दे रहा है, उसकी बजाये जो गुण सामने नहीं हैं, यदि उसकी तरफ भागें तो वास्तविकता में हम कभी भी आगे नहीं बढ़ पायेंगे। हम वह प्रेरणा नहीं ले पायेंगे, जिस प्रेरणा को लेकर हम खुद भी गुणवान बन सकते हैं, हम आगे से आगे बढ़ सकते हैं और अपने जीवन में सुख प्राप्त कर सकते हैं।

गुरमुख महापुरुष जहाँ पर दूसरों के गुणों की चर्चा करता है, गुण अपनाने की कोशिश करता है, वहाँ अपने गुणों की कभी चर्चा नहीं करता। उनका वह अहंकार भी नहीं करता, अभिमान नहीं करता –

बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल।
रहिमन हीरा ना कहे लाख टका मेरा मोल।।

अपने आप का बड़ा मोल बताने वालों का इस गुरमत के मार्ग पर, इस हरि की दरगाह में कोई भी मोल नहीं होता। वे तुच्छ होते हैं। लेकिन जो तुच्छ बन जाते हैं, जो कहते हैं कि हम तो चरणों के दास हैं, चरणों की खाक हैं, केवल कहते ही नहीं मानते भी हैं, वास्तव में वही भक्त हैं।

साधसंगत! गुरसिखों, गुरमुखों की यही निशानी हुआ करती है कि उनके कर्म गुरमत के अनुसार ही होते हैं। हम बाज़ार में सामान लेने जाते हैं तो हम वस्तु के गुण की तरफ देखते हैं कि उसमें कितनी मज़बूती हैं। जो चीज़ें उसमें होनी चाहिये, वो हैं कि नहीं हैं? अगर हम नमक लेने जायें, तो देखते हैं कि नमक में नमकीनपन भी है या नहीं? अगर वह नमकीन ही न हो, तो क्या हम उसे ले आयेंगे? उसे खरीद लायेंगे? कभी नहीं। इस तरह से जो गुरमुखों महापुरुषों के हिस्से में गुण आते हैं, जिनके कारण उनका यश होता है, उनका नाम होता है और सारे संसार में उनको ऊँचा माना जाता है, वो अगर गुण ही हाथ से चले गये, तो खासियत है, वे ही अगर हाथों से चली गई, तो फिर बाकी फर्क क्या रह गया? गुरमुख–मनमुख में बाकी अन्तर क्या रह गया?

महापुरुष परोपकार कभी नहीं छोड़ता। यही तो उसकी रक्षा करता है। जैसे कि एक हिरण के पीछे शेर पड़ा। हिरण आगे भागता जा रहा है, शेर उसके पीछे भागता जा रहा है। आगे गया तो घनी झाड़ियां आ गईं और हिरण उसके पीछे छुप गया। तब शेर उसे देख नहीं पा रहा था, क्योंकि हिरण आँखों से ओझल हो गया। उन घनी झाड़ियों के पीछे हिरण बैठ गया। शेर सामने किसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया। थोड़ा अरसा व्यतीत हुआ तो हिरन ने उन झाड़ियों के पत्तों को खाना शुरू कर दिया। जिन झाड़ियों की ओट के कारण वह खूंखार शेर से बचा हुआ था, उन्हीं झाड़ियों को खुद ही काट डाला, नतीजा कि शेर की निगाह में आ गया और फिर जो होना था वो ही हुआ। कहने का भाव कि जो अमोलक वस्तु (ज्ञान) हमारी ढाल है, उस ढाल को ही यदि हम खुद उठाकर दूर फेंक देंगे तो कहाँ पर बचना सम्भव हो पायेगा। कहने का भाव, ये निराकार, ये दातार, जिसे हम कहें कि यह कोई धन है तो हमारे हिस्से में आ गया है तो यदि धन को संभाले रखेंगे तभी धनवान बने रहेंगे, लेकिन अगर उसी धन को हम गंवा देंगे, उसी धन को हम फेंक देंगे तो फिर कोई भी हमें धनवान कहने को तैयार नहीं होगा। गरीबी हमेशा अपना हमला करती रहेगी, लेकिन अगर उस धन की संभाल है तो कभी कंगाली, कभी गरीबी, कभी मजबूरी जीवन में नहीं आ सकती। इसी तरह से गुरमुख महापुरुष का ये जो कर्मों द्वारा अमीर होना, इस ज्ञान की बदौलत अमीर होना है, इसको अगर ये अपनाये रखता है, तो ये हमेशा उजला रहता है। भले ही सांसारिक दृष्टि में एक मामूली कुटिया में ही क्यों न रहने वाला हो, वह लाख गुण बेहतर होता है, करोड़ गुना इसकी शोभा अधिक होती है।

भक्तों के साथ रहना, उनकी बातें प्यार से सुनना भी महापुरुषों का ऊँचा कर्म होता है। यही भक्ति भी बन जाती है, क्योंकि गुरमुखों महापुरुषों के भक्ति में डूबे हुये वचन हमारे हृदय की तार छेड़ते हैं और ऐसा संगीत उत्पन्न करते हैं जो हमें भरपूर आनन्द देता है। इन वचनों को श्रवण करने से जहाँ हम इतना आनन्द महसूस करते हैं, वहाँ इनको अगर जीवन में अपनाये रखते हैं तो यह भक्ति भरा संगीत हमेशा हमें आनन्द देता रहता है। साधसंगत! अगर केवल बोल ही हों, अगर केवल सुनना और सुनाना ही हो तो उससे कभी भी किसी को महानता प्राप्त नहीं हुई है। महापुरुषों भक्तों ने इसको धारण किया है, अपनाया है। जो इसको अपना लेते हैं, वही इसका अनुभव करते हैं। तालाब में जो उतरता है, वही शीतलता महसूस करता है। लेकिन जो पानी में

उतरता नहीं, किनारे पर ही बैठा हुआ है, उसको यह ठंडक का आभास नहीं हो सकता।

राजस्थान के कुछ इलाकों में जाने का अवसर मिला, जिस इलाके में भी गये वहाँ चारों तरफ रेत ही रेत नज़र आई, मिट्टी ही मिट्टी सड़कों पर नज़र आई। चलते चलते अचानक देखा कि थोड़ी सी हरियाली शुरू हो गई है। लहलहाती खेती शुरू हो गई है। घने पेड़ नज़र आने लगे हैं। आगे थोड़ा चलकर देखा कि क्या क्या नज़ारा है। आगे पुलिया आई, पुलिया को जब देखा तो उसके नीचे नहर चल रही थी। यानि कि उस सूखे तपते इलाके में उस पानी ने कितनी हरियाली ला दी, उस जल ने कितनी भरपूर फसलें कर दीं। इसी तरह से जिस इन्सान के जीवन में यह नाम रूपी अमृत आ जाता है, उसके जीवन में भी हरियाली होती है, वह हमेशा ठंडक में रहता है, कलेशों से दूर रहता है और वैर, ईर्ष्या से दूर रहता है। एक और चीज़ उस रेगिस्तानी इलाके में नज़र आई, वहाँ के ऊँट देखने को मिले। ऊँट को देखकर आम इन्सान कह देता है कि 'ऊँट रे ऊँट तेरी कौन सी कल सीधी? यह क्या टेढ़ा-मेढ़ा शरीर है? क्या इसकी शेप है। क्या इसका स्वरूप है। लेकिन उस ऊँट के भी कुछ गुण नज़र आये कि वह इस इलाके में कितने-कितने दिन चलता रहता है। इन्सान को थोड़े समय के बाद ही प्यास लग जाती है, लेकिन वह कई-कई दिन तक पानी ही नहीं पीता। एक और चीज़ नज़र आई, उसकी खुराक। आप जानते हैं कि कीकर हर स्थान पर हो जाती है। तो उसकी खुराक कीकर है, वह कीकर के पत्ते खाता है जिसके साथ में इतने तीखे तीखे कांटे लगे हुये, वह कांटों को भी साथ ही हड़प कर जाता है। कांटों को भी खा जाता है। यह देखकर मन में ख्याल आया कि महापुरुषों की भी ऐसी अवस्था होती है कि चाहे सुख आ जाये, चाहे दुख आ जाये उन्हें स्वीकार किये जाते हैं और इस निराकार परमात्मा की रज़ा को मानकर आगे बढ़ते जाते हैं।

ईसा मसीह की कहानियों में बताया गया है कि एक बार भोजन बहुत सीमित था, लेकिन खाने वाले अधिक थे। वहाँ पर बताया गया कि भोजन सबको प्राप्त हो गया और जितना भी उपलब्ध था, उसी से सभी ने भोजन ग्रहण किया और सभी को सन्तुष्टि हुई। फिर एक दृष्टान्त दिया गया कि हज़रत ईसा मसीह जी नाव में बैठे हैं। साथ ही उनके पैरोकार बैठे हुये हैं। अचानक बहुत तेज़ हवा चलती है, तूफान आता है। सारे एकदम घबरा जाते हैं और इस दातार प्रभु से विश्वास हटा लेते हैं। वे बड़े ही भयभीत होते हैं तो

हज़रत ईसा मसीह जी कहते हैं कि आपने पहले भी ऐसा देखा कि किस तरह से इस दातार ने लाज रखी, किस तरह से ये कारज सिद्ध हुये। ये कुछ हवा चली है तो आप फिर घबराहट में आ गये हो। कहने का भाव कि भक्त जब इस निरंकार को मन में बसा लेता है, इसके ऊपर पूर्ण विश्वास रखता है तो डर नहीं लगता। साथ ही उन्होंने कहा कि एक सरसों के छोटे से बीज जितना विश्वास भी आप अगर अपने मन में रख लो, तो तुम हाथों से पर्वत हटा सकते हो।

हमें कर्म करते समय यह ध्यान अवश्य रखना है कि जैसा व्यवहार हम अपने साथ चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों के साथ भी करना चाहिये। जैसा हम अपना सत्कार चाहते हैं, हमारी ज़ुबान से दूसरे के लिये भी वैसा ही सत्कार निकलना चाहिये। दूसरे का भी मान होना चाहिये। आज यही दातार के आगे अरदास है कि दातार ऐसी मेहर करे कि हम एक गुरमुख महापुरुष ऐसी रोशन मीनार की तरह बने। गोवा में चारों ओर समुद्र है, जिसमें किश्तियां भी चलती हैं, जहाज़ भी चलते हैं। उसी समुद्र के किनारे पर एक 'लाइट हाउस' (प्रकाश स्तम्भ) लगा है। कभी तूफान आ जाये या अन्धकार हो जाये तो वे जहाज वाले उस लाइट हाउस को देखकर सही मार्ग पर चल पड़ते हैं। महापुरुष भी ऐसे लाइट हाउस होते हैं, जो ज्ञान का प्रकाश प्रसारित कर सबको मार्ग दिखाया करते हैं।

सन्त महापुरुष अपने मन को ज्ञान द्वारा दबा कर रखते हैं। कबीर जी ने कहा है कि –

जो किछु किया सो मन किआ।

यह (जीव) मन से ही तो बंधा हुआ है। इन चीज़ों को इन्सान छोड़ के चला भी जायेगा तो क्या गारंटी है कि उसके मन में वो तस्वीरें नहीं बनी रहेंगीं? सोते हुये भी उनके ख्वाब नहीं आते रहेंगे? जो मन से माया का त्याग करता है, अर्पित भाव से त्याग करता है, बड़ा त्यागी उन्हीं को माना जाता है। जितने भी भक्त महापुरुष इस संसार में आये हैं, उन्होंने हमें इसी त्याग का पाठ सिखाया है कि हम जिस संसार में रहते हैं, यहाँ के सभी पदार्थ दातार ने इस्तेमाल के लिये दिये हैं। लेकिन ज़रूरत इस बात की है कि हम इनसे विचलित न हो जायें। इनमें गलतान न हो जायें, इनके साथ ऐसा मोह

न डाल बैठें कि जब उनको छोड़ने का कुछ ऐसा समय आ जाये या जब ये हमसे छूट जायें तो इनकी तरफ हमारा मोह न लगा रहे।

गुरमुख महापुरुष के हिस्से में सन्तोष आता है। ये सन्तोषी होते हैं –

सन्तोष कर दे दान सन्तोषी को उतरे मन की भूख।

यह सन्तोष का दान हमेशा दातार से मांगते हैं कि भले ही दातार संसार के सारे पदार्थ दे दे, लेकिन अगर सन्तोष नहीं दिया तो हमेशा अधूरापन बना रहेगा। यह तो जैसे जिस बर्तन में छेद होगा, उसे कितना भी भरते जाओ, बर्तन कभी भी भरता नहीं इसी तरह इन्सान की भी मानसिक दशा यही है। इन्सान की भी कभी तृप्ति होने वाली नहीं। कुछ आ गया है तो यह नहीं कि उसकी तसल्ली हो जाती है। यह आग तो और भी बढ़ती जाती है। भक्त इसीलिये सन्तोष मानता है कि दातार! मेहर कर, कृपा कर कि जो तू दे रहा है, इसी में ही हम खुश रहें। तू जितना दे वो भी भलाई में ही लगे, सुखदायक हो। ये दातार के साथ अपना नाता जोड़कर मन को इसके साथ लगाकर रखते हैं, क्योंकि मन अगर इसके साथ जुड़ा है तो यह मन हर तरह से खिला रहता है, यह भक्ति का आनन्द लेता है, फिर आनन्द में ही अपना जीवन व्यतीत करता है।

जैसी भी हो परिस्थिति, एक सी हो मनोस्थिति

कहते हैं कि सारे संसार के लोग बंटे हुये हैं। तेर–मेर में पड़े हुये हैं। यह बँटना या बाँटना इन्सान को शोभा नहीं देता। क्योंकि यह पूरी सृष्टि प्रभु की बनाई हुई है। इसमें कहीं कोई फर्क नहीं है। ऐसा नहीं है कि हिन्दुस्तान और इसके साथ लगते हुये दूसरे मुल्कों के बीच कोई दो फुट का अन्तर है या हिन्दुस्तान में ही जितने प्रान्त हैं, कोई इतने अलग–अलग टुकड़े हैं धरती के। यह सारी धरती एक कन्टीन्यूटी (निरन्तर) में है, यह पूरी जुड़ी हुई है। दरारें तो इन्सानों के मनों में हैं। इनके कारण ही वह बहुत कुछ ऐसा बना लेता है जिससे दूसरों का नुकसान होता है। आज विज्ञान ने बहुत तरक्कियां की हैं।

बड़े–बड़े न्यूक्लिअर वैपन (नाभिकीय हथियार) बनाये गये हैं। और भी अनेक घातक हथियार बनाये गये हैं। इन्सान चाँद पर पहुँच गया है। और भी बहुत से ग्रहों (planets) के इर्द–गिर्द घूमे जा रहा है। इतनी तरक्की हो गई है कि अगर आकाश से ज़मीन पर हमला करना पड़े तो वह भी कर सकता है। कहने का भाव, सभी ओर विनाश के लिये ही सोचा जा रहा है। वास्तव में तरक्कियां तो वे ही मुबारक होती हैं जो कल्याण के लिये हों, जो इन्सान को सुख देने के लिये हों। इन्सानों को नुकसान पहुँचाने के लिये जो तरक्कियाँ की जाती हैं, वह पिछड़ापन कहलाता है। अगर गहराई से देखा जाये तो हथियार भी अपने आप में खतरनाक नहीं होते, खतरनाक होती है इन्सान के मन की भावना, खुदगर्ज़ी और लालसा। क्योंकि मन में जब ऐसी भावना उत्पन्न होगी, तभी वह इन हथियारों का इस्तेमाल करेगा। इन हथियारों पर भी कोई कम पैसा खर्च नहीं हो रहा है। अरबों–खरबों डॉलर (पौंड या किसी और करेन्सी का भी चाहे नाम लें) इन पर खर्च हो रहा है। हालाँकि कुछ समय पहले इसमें (परमाणु हथियारों में) कुछ कमी भी की गई लेकिन अभी भी इन पर बहुत धन खर्च हो रहा है। आप सन्त–महापुरुष तो यही यत्न कर रहे है। कि हथियार बनाने पर कम पैसा खर्च हो और अधिक धन ऐसे साधनों पर लगाया जाये जिससे जो पिछड़े हुये मुल्क हैं, पिछड़े हुये लोग हैं, उनका भला हो सके। दातार कृपा करे कि ऐसी भावना अन्य लोगों तक भी पहुँच सके ताकि मानव जाति को समाप्त करने के बारे में न सोचा जाये बल्कि मिलजुल कर चलने की भावना से इस धरती को संवारा और सजाया जाये। सदैव ऐसे प्रयास किये जायें जो धरती के लिये वरदान सिद्ध हों। ऐसा विवेक जिसे भी प्राप्त होता है, वह धरती के लिये कल्याणकारी हो जाता है। ज्ञान की रोशनी को महफूज़ करने वाला हो जाता है। आप सन्तजन इस रोशनी को महफूज़ (सुरक्षित) रख रहे हैं, क्योंकि आपके मन में कभी वैर–भावना नहीं आती बल्कि आप सदैव प्यार का सन्देश देते हैं, प्यार की महक बाँटते हैं तथा निरन्तर भाईचारे की भावना फैलाने में अपना योगदान देते हैं और ऐसे ही आपने यत्न भी किये हैं। दातार कृपा करें कि ये यत्न निष्फल न हों और यह रोशनी हर किसी के घट में जलती जाये।

आज मानवता अन्धकार में कष्ट सह रही है, हाहाकार कर रही है। इस हाहाकार के लिये भी कुछ हद तक मानव स्वयं ही ज़िम्मेदार है। जैसे कोई स्वयं अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार ले और चीखना–चिल्लाना शुरू कर दे तो उसका चीखना–चिल्लाना किसी और के प्रहार द्वारा नहीं बल्कि अपने हाथों द्वारा

किया गया प्रहार है। भक्त इसीलिये प्रयत्नरत हैं कि ऐसी सूझ उन लोगों को भी प्राप्त हो जाये जो मानवता का नुकसान कर रहे हैं या किसी दूसरे का नहीं, बल्कि स्वयं अपना ही नुकसान कर रहे हैं या किसी दूसरे का नहीं, बल्कि स्वयं अपना ही नुकसान कर रहे हैं। इसीलिये भक्त सदैव परमार्थ के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। वे बार-बार इस सत्य की ओर मोड़ने का प्रयत्न करते हैं तथा गुरु-पीर-पैगम्बरों की शिक्षाओं पर चलने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि इन्हीं शिक्षाओं के कारण हम स्वच्छ भावों से युक्त हो पायेंगे।

साधसंगत! जितने भी गुरु-पीर-पैगम्बर हुये, वे सब समूची मानवता के लिये हुये। जो महापुरुष हिन्दुस्तानी संस्कृति में पले, उनका पहरावा वैसा रहा। जो किसी रेगिस्तानी क्षेत्र में पैदा हुये, पले, उनकी भाषा व पहनावा वैसा ही रहा। जो ऊँची पहाड़ियों में पैदा हुये, उन्होंने वहीं की संस्कृति खान-पान के साधन अपनाये। लेकिन संस्कृतियों के अलग-अलग होने के बावजूद उनकी मान्यताओं में कभी कोई अन्तर नहीं आया। खान-पान, भाषा, पहनावे आदि की भिन्नता के कारण उन्होंने कभी किसी को पराया नहीं माना और न ही कभी स्चयं को वर्ल्ड फैमिली (विश्व परिवार) से अलग माना। यहाँ बोलने वाले सभी महापुरुषों ने भी यही प्रकट किया है कि हमें भी इसी दृष्टि को अपनाना है, जो उन महापुरुषों ने अपनाई। हम भी भले ही अलग-अलग संस्कृतियों में जन्में पले हैं, लेकिन इन कारणों से हम बँटे नहीं। जुदा न हों, दूसरों को नफरत की निगाह से न देखें। संकीर्णता से न देखें। गोरे-काले के भेद में न पड़ें, क्योंकि ये सभी भेद बेमानी हैं। हम सभी यह जान जायें कि -

माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारे।

यानि शरीर के रंग तो अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन सभी एक ही मिट्टी से बने हैं। आज यहाँ से यही आवाज़ें बुलन्द की जा रही हैं कि चारों ओर शान्ति हो, सुकून हो। इन आवाज़ों के साथ-साथ ऐसी भावनाओं को लागू करने के लिये आप में वफादारी (sincerity) भी है। आज संसार में और भी अनेक ऐसे प्लेटफॉर्म हैं, जहाँ से भाईचारे की आवाज़ें आ जाती हैं, लेकिन वे केवल आवाज़ें ही रह जाती हैं क्योंकि उनका खुद का कर्म इसके विपरीत होता है। ऐसे कर्म, जो पहले जुड़े भी होते हैं, उन्हें भी वे अलग कर देते हैं, लोग उनमें भी दूरियाँ पैदा कर देते हैं। आज जहाँ जोड़ने वाली आवाज़ों को बुलन्द करने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी आवश्यकता है कि

उन पर ऐक्शन (कार्य) भी हो, उनका फॉलो–अप (अनुकरण) भी हो। आप सन्तजन–भक्तजन जहाँ भाईचारे का एक नमूना पेश कर रहे हैं। यहाँ मुस्लिम परिवारों में पैदा हुये सज्जनों ने भी अपनी भावनायें प्रकट की हैं। उन्हें यह नहीं कहा गया कि वे उर्दू की जगह पंजाबी बोलनी शुरू कर दें। वे जिस प्रकार पहले रहते थे अब भी उसी प्रकार रहते हैं। अगर वे कुरान पर अकीदा रखते आये हैं, हज़रत मुहम्मद साहिब की शिक्षाओं को पढ़ते–सुनते रहे हैं तो आज भी वे उसी के हवाले दे रहे हैं। उनसे यह नहीं कहा गया कि आप कुरान मत पढ़िये, या उससे हवाले न दीजिये और इसी प्रकार अगर अमेरिका से आये कोई सज्जन बाइबल से कुछ कोट (उल्लेख) कर रहे हैं, उन्हें भी यह नहीं कहा जाता कि आप आगे से बाइबल से कुछ न कहें। यहाँ तो ऐसी मिसाल पेश की जा रही है कि अलग–अलग घरानों में पैदा हुये इन्सान भी यहाँ एक हो गये हैं और एक होने का कारण भी हर किसी ने स्पष्ट किया है कि प्रभु को जानने से ही ऐसा हो पाया है। सभी ने ऐसा ही कहा है कि हम भी कभी एक न हो पाते, एक दूसरे के नज़दीक न हो पाते अगर हमें ऐसी सूझ प्राप्त न होती। हमें एक अकाल पुरुख परमात्मा के साथ जोड़ दिया गया है, इसका बोध हमें प्राप्त हो गया है। तभी हमें यह एहसास हो पाया है कि कोई पराया नहीं है। जब सबका पिता एक ही है तो फिर पराया कैसे हुआ जा सकता है। इस एक पिता को न जानने के कारण नादानी वश हम इसके नामों में ही उलझ गये लेकिन अब क्योंकि पिता की जानकारी हो गई, इसलिये अब हम सम्पूर्ण मानवता के लिये आवाज़ दे रहे हैं। सच्चाई सब के लिये सांझी होती है। सच्चाई किसी मज़हब के साथ बंधी नहीं होती। यह एक यूनिवर्सल ट्रुथ (अटल सत्य) है। इसे किसी विशेष तबके के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। जो सच्चाई से वाकिफ नहीं होते, वे बँटे रहते हैं और दूसरों को भी बाँटते चले जाते हैं, उनके लिये अल्लाह कोई और होता है, राम कोई और। उनके लिये वाहे गुरु कोई और होता है तथा गॉड कोई और। ऐसे लोग कभी इकट्ठे नहीं होते, कभी एक सुन्दर गुलदस्ते का रूप नहीं बन पाते। सुन्दर गुलदस्ते का रूप तभी बन पाते हैं जब परमपिता परमात्मा, अल्लाह, रमे हुये राम को जान लिया जाता है। इसीलिये हम सबने इस एक को जानना है, इसके साथ जुड़ना है और इस एक के साथ जुड़कर आपस में भी जुड़ना है, आपस में मिलकर बैठना है और निरन्तर सद्भावना से युक्त होकर, सद्कर्म करते हुये जीवनयापन करना है। हम कभी अपने हृदय में किसी के प्रति घृणा का भाव न रखें, किसी के साथ नफरत न करें, किसी पर जुल्म न करें बल्कि निरन्तर सुन्दर उसूलों को अपनाकर, खुद ऐसी सुन्दरता को धारण करके, पूरे

संसार को सुन्दरता प्रदान करते चले जायें। यही एक मकसद है मिशन का और इसी एक मकसद की पूर्ति में मिशन हमेशा लगा रहता है और आगे भी (भविष्य में) इसी मकसद को पूरा करने का प्रयास करता रहेगा। इसके अतिरिक्त और कोई राजनीतिक मकसद इस मिशन का नहीं है। मिशन यही चाहता है कि सारे इन्सान जुड़ जायें, सभी एक दूसरे से मिलकर बैठें, एक–दूसरे के साथ करुणा और स्नेह के साथ पेश आयें।

दातार कृपा करे, मेहर करे, सभी को सुमति प्रदान करे, सद्बुद्धि प्रदान करे ताकि सभी ऐसी रोशनी में विचरण कर पायें। ये किसी को उजाड़ें नहीं, बसायें ही। किसी को रुलायें नहीं बल्कि सभी को हंसी प्रदान करें। किसी की आँखों को आंसू न दें बल्कि जैसे अपने लिये खुशी चाहते हैं, वैसी ही खुशी सभी को प्रदान करें। गुरु–पीर–पैगम्बरों द्वारा प्रदान की गई भावना हमेशा स्थापित रहे। सभी इसे और मजबूती प्रदान करें क्योंकि इसके द्वारा ही यह देश अखंड और एक रह सकता है। इस देश की जो रिच हैरीटेज (समृद्ध विरासत) है, उसको तभी बरकरार रखा जा सकता है। ऐसी भावनाओं के बिना इस देश की अखंडता को खतरा पैदा हो रहा है। सन्तों–महापुरुषों की भावनायें ही देश को मज़बूत रख पायेंगीं और मानव जाति के बचाव का कारण बन पायेंगी।

हम सुनते आ रहे हैं कि परमात्मा बहुत विशाल है, लेकिन कितना विशाल है, यह देखने से ही पता लगता है। कबीर जी ने देखा तभी कहा। आज लोग कहते हैं कि निराकार को कैसे देखा जा सकता है। अगर न देखा जा सकता होता तो कबीर जी यह क्यों कहते कि –

मैं कहूँ आंखन की देखी।

भाव, उन्होंने इसे देखकर इसका वर्णन किया। उन्हें ऐसी निगाह प्राप्त हुई सद्गुरु से। मीरा को भी यही निगाह प्राप्त हुई तो उसने श्याम को चारों और मौजूद पाया। मीरा बचपन से ही साकार के प्रति समर्पित थी। वह भगवान कृ□ण की मूर्ति हमेशा अपने पास रखती थी लेकिन भगवान कृ□ण के असल निराकार स्वरूप के साथ उसका नाता जुड़ा गुरु रविदास जी के चरणों में जाने से। तभी उसकी भक्ति को पूर्णता प्राप्त हुई। यहाँ भी यही बात कही जा रही है कि जिस प्रभु–परमात्मा का ज़िक्र हम कर रहे हैं, इसका जब तक

हमें बोध नहीं होता, तब तक हम भ्रमों में रहते हैं और यही भ्रम हमारे दुखों का कारण बने हुये हैं। हम दूसरों को पराया मान रहे हैं। हमारे लिये दूसरों की जाति नीची हो गई है और अपनी जाति ऊँची। ऐसी भावनाओं से हम नुकसान का कारण बन रहे हैं। ऐसी भावनायें तभी समाप्त हो सकती है। जब इस सत्य के साथ नाता जुड़ जाता है। सत्य की परिभाषा हम उसी को दे सकते है। जो सदैव एकरस रहने वाला हो और प्रभु–परमात्मा के सिवाय कोई शक्ति एकरस रहने वाली नहीं है। हर किसी में तब्दीलियाँ हैं। सदैव एकरस रहने के कारण ही प्रभु–परमात्मा को छोड़कर सभी में तब्दीली आ जाती है। अगर मैं ज़ोर से कहूँ कि अभी रात है तो ये स्टेटमैन्ट इस वक्त तो ठीक है लेकिन चन्द घंटों के बाद मैं फिर कहूँ कि अभी रात है तो सभी हँसेंगे कि सूरज चढ़ा हुआ है ओर यह कह रहे हैं कि अभी रात है।

इसी प्रकार हम कहते हैं कि अभी बचपन है, यह सत्य है लेकिन कुछ वर्षों बाद जवानी में कदम रखते ही बचपन झूठ हो जाता है और जवानी सत्य हो जाती है। इसी प्रकार गर्मी–सर्दी में तब्दील हो रही है, ऊँचाई गहराई में तब्दील हो रही है।

भाव, हर चीज़ क्षण–प्रतिक्षण बदल रही है। केवल परमात्मा, निराकार, अकाल पुरख को ही सत्य की संज्ञा दी गई है। जो भी इस सत्य के साथ नाता जोड़ लेते हैं, वही हकीकत में विचरण करते हैं वरना अनेक लोग बचपन से ही कुरान, रामायण, गुरुवाणी आदि धर्मग्रन्थों का पाठ करते आ रहे हैं लेकिन जब इस सत्य का बोध हुआ तभी एक मंच पर इकट्ठे होकर एक जैसी आवाज़ दे पाने में सफल हुये हैं। मुसलमान भाई भी यह कह रहा है कि जिस ‘शाहरग’ से नज़दीक के बारे में मैंने सुना था, उसका बोध हो गया है। हिन्दू भाई भी यह बात कह रहा है कि रामायण में जिस रमे हुये राम का ज़िक्र था, उसे मैंने जान लिया है।

कहने का भाव, एक सत्य की लखता (जानकारी) के बाद ही भक्तजन–सन्तजन ऐसी आवाज़ देते हैं जैसी कबीर साहब ने दी है –

काशी काबा एक है एक है राम रहीम।
मैदा एक पकवान बहु बैठ कबीर जीम।।

काशी, काबा इसलिये एक हैं, क्योंकि राम–रहीम एक हैं। इस राम–रहीम को एक न मानने के ही नतीजे हैं कि आज कुछ समय बीतते ही शहरों में फिर कर्फ्यू लग जाते हैं, चारों ओर फिर मातम छा जाता है। जितने गुरु–पीर–पैगम्बर इस संसार में आये, उन्होंने इसे एक जाना और माना था और तभी एकता के सूत्र में स्वयं बंधे थे और दूसरों को भी बांधा था। उन्होंने मानवता को ऐसे सुन्दर हार का रूप दे दिया था, जिसमें भिन्न–भिन्न रंग के फूल हैं लेकिन सभी एक ही धागे से पिरोये हुये हैं। लाल रंग का फूल यह नहीं कह रहा है कि – इस धागे में लाल फूल होने चाहिये। अगर इसमें सफेद फूल रहे तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा या मैं उसे यहाँ से भगा दूँगा। ऐसा नहीं है। जो इस प्रकार भिन्न–भिन्न रंगों के फूलों की सुन्दर माला बन जाया करती है, वह ही गले की शोभा बना करती है। सन्तों–भक्तों के लिये भी पूरी दुनिया के लोग एक समान होते हैं क्योंकि इन्होंने जान लिया होता है –

सब में साजा एक सोई।

ये जानते हैं कि –

सभै घट रामु बोलै, रामा बौले,
राम बिना को बोलै रे...

आज हम देख रहे हैं कि किस प्रकार मज़हबों के नाम पर लड़ाइयाँ हो रही हैं। एक–दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश की जा रही है। आज हम कहते हैं कि हिन्दू–मुस्लिम दंगे हो जाते हैं। पर बुल्लेशाह जी तो कहते हैं कि–

शिया कहन्दे असी उचेरे, सुन्नी साथों थल्ले।
सुन्नी कहन्दे असी उचेरे, शिया खस्से झल्ले।
अमला बाजों दोहां धिरां दे सिर ते पैंदे खल्ले।

कहते हैं कि एक–दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिशें हो रही हैं। एक–दूसरे को पराया माना जा रहा है, हालांकि दूसरी तरफ कहा यह भी जाता है कि –

मखलूक सारी है कुनबा खुदा का।

इससे क्या यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि केवल कहना–सुनना ही है, अमल नहीं है। जब एक–दूसरे के प्रति रवैया, वैर–द्वेष मन में रहता है तो

उसके परिणाम अनेक मासूमों को भुगतने पड़ते हैं। जब हम एक परमात्मा को जान लेंगे, इसका बोध कर लेंगे तो एक–दूसरे को नीचा मानना छोड़ देंगे। अपने आपको दास मान लेंगे। जब हम निरन्तर स्वयं को अदना मानकर जीवन जीते हैं तब हम परमेश्वर के निकट होते हैं। इस प्रकार की भावनायें अपनाकर ही हम प्यार को बढ़ावा दे पायेंगे और शान्ति स्थापित कर पायेंगे तभी इस धरती पर स्वर्ग का रूप स्थापित कर सकेंगे।

आज ऐसे ही यत्न यहाँ हो रहे हैं और आप सभी इसमें अपना योगदान दे रहे हैं। ऐसा योगदान निरन्तर बना रहे ताकि अन्धकार में कमी आती जाये और सभी उजाले में जीवन जियें। ऐसा ही प्रयास सभी गुरु–पीर–पैगम्बरों ने अपने समय में किया। भले ही वे भगवान राम हुये, भगवान कृष्ण हुये, हज़रत मोहम्मद साहब हुये, हज़रत ईसा मसीह हुये या फिर गुरु नानक देव जी से लेकर श्रीगुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज हुये। इन सभी ने अपना जीवन परोपकार में ही लगा दिया और हमेशा यही चाहा कि संसार का कोई भी इन्सान सच्चाई से वंचित न रहे, क्योंकि अगर सच्चाई से वंचित रहेंगे तो न उनकी आत्मा का कल्याण होगा और न ही वे इस संसार में प्यारपूर्वक रह पायेंगे। महात्माओं ने लोगों का लोक और परलोक सुधारने के लिये परोपकार किये। वरना उन्हें तो ये सच्चाई प्राप्त हो ही चुकी थी। इसलिये एक कोने में आराम से बैठ सकते थे। क्या ज़रूरत थी, शरह के लोगों के ज़ुल्मों को सहन करने की? वे जानते थे कि जितनी देर अन्धकार है उतनी देर कहीं भी सुख–चैन–सुकून आने वाला नहीं है। जितनी देर इन्सान अपने ऊपर आवरण ओढ़े रहेगा, पर्दे में रहेगा, उतनी देर खुद भी अंधकार में रहेगा और दूसरों को भी अज्ञान के पर्दे के कारण बेगाना मानकर चलेगा। उतनी देर यह आत्मा को आवागमन के चक्कर में बांधे रखेगा। इसे निजात (मुक्ति) प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसी भावना के अन्तर्गत उन्होंने (महापुरुषों ने) परोपकार किया और इस परोपकार के कारण अपनी जानें तक भी कुर्बान कर दीं।

दास अक्सर मिसाल देता है कि एक पेड़ होता है, उस पर फल लगा होता है। कोई अगर उसे पत्थर भी मारता है तो भी वह पेड़ उसे फल ही देता है। इसी प्रकार सन्तों–भक्तों ने भी सब कुछ सहन करके संसार को हरि नाम ही दान दिया, अमर पद ही प्रदान किया। जैसे पेड़ पूरा दिन स्वयं धूप में खड़ा रहता है लेकिन अपने करीब आने वालों को छाया ही प्रदान करता है। इसी प्रकार भक्त भी संसार को छाया देते आये हैं। इन सन्तों–भक्तों की

बदौलत ही, उनके परोपकारों की बदौलत ही, इस सत्य के सन्देश के कारण ही धरती का निखरा रूप सामने आता है। जहाँ भी इस रोशनी की कद्र नहीं की, जहाँ–जहाँ भी महापुरुषों को शक की निगाह से देखा गया, उनके प्रति घृणा और वैर रखा गया, वहाँ अंधकार ही बना रहा और उसमें निवास करने वाले पतन की ओर गये, उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हुआ। इसके विपरीत जहाँ उजाला स्थापित हुआ, वहाँ इन्सान देवता और देवता से परमात्मा का रूप होते चले गये। अभी कुछ समय पहले मिडिल ईस्ट के दुबई और शारजाह आदि स्थानों पर जाने का अवसर मिला। कई स्थानों पर देखा कुछ वर्ष पहले वहाँ रेत ही रेत थी। वहाँ बहुत दूर से लाकर पानी पहुँचाया गया। इसलिये अब कुछ शहरों में हरियाली आ गई लेकिन उससे चार कदम बाहर आ जायें तो फिर वही तपती रेत ही देखने को मिलती है। यह जल वहाँ पहुँचाने का कार्य जिन्होंने किया, वे उन लोगों के लिये राहत के कारण बने।

इसी प्रकार धरती पर स्वर्ग वही स्थान है जहाँ इन्सानियत है, जहाँ इन्सान ज्ञान के उजाले में जी रहे हैं, जहाँ सभी स्वयं को एक परमात्मा की सन्तान मानकर जी रहे हैं। केवल ऐसे स्थान ही सुन्दर हैं, वहाँ ही स्वर्ग का नज़ारा है, वहाँ ही जन्नत है। जहाँ हैवानियत है, जहाँ मासूमों पर जुल्म किये जा रहे हैं, हक छीने जा रहे हैं, वे स्थान हरगिज़ पवित्र नहीं हैं और उन स्थानों की कोई महानता नहीं है।

साधसंगत, सन्तों–भक्तों ने ही इस संसार का बचाव किया है, इसीलिये तो कहा जाता है कि –

सन्त न होते जगत में तो जल मरता संसार।

चारों ओर जलती आग से, जहाँ जल हो, कोई तालाब हो, वहीं राहत मिल सकती है। ठीक इसी प्रकार चारों ओर जलते हुये संसार में अगर कहीं राहत है तो वह इन भक्तों के कारण ही है। सन्त प्रवृत्ति के कारण ही है, सज्जनता के कारण ही है। सन्त प्रवृत्ति के कारण ही है, सज्जनता के कारण ही है।

जैसे दास अक्सर मिसाल देता है कि किसी सेठ का एक लड़का था। उसने सेठ से कहा कि वह नदी में नहाना चाहता है। सेठ ने अपने नौकर को

उसके साथ भेज दिया और साथ ही समझा दिया कि नदी का बहाव बहुत तेज़ होता है, तुम ध्यान रखना। मेरे बेटे ने बहुत कीमती वस्त्र पहन रखे हैं। उसकी टोपी पर हीरे की कलगी लगी है, हीरों की अंगूठियाँ इसने पहन रखी हैं इसलिये जब यह नहाने जाये तो तुम इन सब चीज़ों का ध्यान रखना। नौकर बच्चे को लेकर नदी किनारे चला गया। बच्चे ने नहाने के लिये नदी में छलाँग लगाई तो अचानक उसका पाँव उखड़ गया और वह डूबने लगा। पानी में से मुँह बाहर निकालकर वह ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाने लगा कि बचाओ–बचाओ। अब बच्चा डूब रहा है लेकिन नौकर कपड़ों की देखभाल में ही लगा हुआ है। अचानक सेठ उधर से आ गया। उसने जब देखा कि उसका बेटा डूब रहा है, बचाओ–बचाओ चिल्ला रहा है लेकिन नौकर आराम से खड़ा है, तब उसने नौकर को डाँटते हुये कहा कि क्या तुझे दिखाई नहीं दे रहा कि मेरा बेटा डूब रहा है? इस पर नौकर कहने लगा, 'सेठ जी, वह तो दिख रहा है परन्तु आपने ही तो कहा था कि इसके कपड़े, टोपी, अंगूठियां बहुत कीमती हैं, तुम इनका ध्यान रखना, इसलिये मैं तो आपके कहे अनुसार अपनी ड्यूटी दे रहा हूँ। तब सेठ झुंझलाकर बोला कि तुझे इतनी भी समझ नहीं है कि जिसके लिये ये सब चीज़ें हैं, वह तो डूब रहा है, उसे तो तू बचाने की कोशिश नहीं कर रहा है और चीज़ों की तरफ ध्यान लगाये बैठा है।

इसी प्रकार आज लोग इन कर्मकाण्डों को, पदार्थों को बचाने में लगे हुये हैं लेकिन जो असलियत है, वह डूब रही है। वो आंखों से ओझल हो रही है। उसे बचाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। जो भक्तजन होते हैं वे इस कीमती वस्तु की संभाल करते हैं, इसके प्रति नतमस्तक होते हैं, इसी की उपासना करते हैं। सूफी सन्त भी इसी तरह कहते हैं कि –

मय इश्क दी खुमारी मिटदी नहीं,
शरह जाम उठावां किस वेले।।

अर्थात् यह जो हकीकी इश्क की मय मैंने पी है, अब मैं शरह का जाम कब पिऊँ? मेरे लिये तो यह इश्क ही सब कुछ है, मेरा अब और किसी की तरफ ध्यान ही नहीं जाता। एक और जगह महापुरुष कहते हैं कि –

सिर यार दे कदमों चों उठदा नईं,
मैं हज काबे जावां किस वेले।

उन सन्तों–महापुरुषों ने इसी हकीकत को जाना तभी उन्होंने मारफत की बातें कीं, इस हकीकी इश्क की बातें कीं और इसी के रंग में रंगे रहे। सांसारिक वस्तुओं के मुकाबले उन्होंने विशुद्ध प्रेम को, निष्काम प्रेम को ही विशेषता दी और इस प्रेम के बदले कुछ चाहा नहीं। क्योंकि –

बेगर्ज़ जिन्हाँ दी उल्फत है
ओह नमाज़ दी कीमत नई मंगदे।

सन्त भक्त जो भक्ति करते हैं, सत्संग करते हैं, सेवा और सुमिरण करते हैं, वे बेगर्ज़ और निष्काम भाव से करते हैं। उन्होंने कभी उनकी कीमत नहीं मांगी। वे सदैव इस प्यार के रंग में रंगें हुये सुबहो–शाम, रात–दिन इसी प्यार के नगमे गाते रहते हैं। ऐसे सन्त–महात्मा विपरीत हालातों व नफरतों के बावजूद अपनी प्रीत निभाते हैं। ऐसे भक्तों की भक्ति का ही आज ज़िक्र हो रहा है। धन्य हैं वे भाग्यवान हैं, विशेष हैं वे, जिन्होंने इस यथार्थ भक्ति के ढंग को जान लिया है तथा निरन्तर निष्काम भक्ति किये जा रहे हैं। समर्पित भाव से आगे बढ़ते जा रहे हैं। यह समपर्ण की भावना तभी जागृत होती है, जब इस सत्य को सम्मुख रखा जाता है। अपनी 'मैं' को हटा दिया जाता है। जब हम अपनी मनमति को एक तरफ रखकर, समर्पित भावना से जीवन जीते हैं तभी हम पूर्ण तौर पर आनन्द और खुशियों के भागीदार बनते हैं। फिर परिस्थितियाँ बदलने पर भी आनन्द कायम रहता है। यहाँ पर लिखा भी हुआ है कि अगर इस मन का नाता इस नाम (निरंकार) के साथ जुड़ा रहता है, इस परमसत्ता के साथ लिव (ध्यान) जुड़ी रहती है तो परिस्थितयों के बदलने के बावजूद भी मनोस्थिति एकरस होती है जिस कारण आनन्द और सुकून बना रहता है। जैसे कहा भी है कि –

जो नर दुख में दुख नहीं मानै,
सुख,सनेहु अरु भै नहीं जाकै कंचन माटी मानै।

जो स्तुति, निन्दा, मान, अपमान से ऊपर उठकर जीता है, उसी की मनोस्थिति स्थिर होती है। वह दुनियावी घटनाचक्र के उतार–चढ़ाव के साथ कभी उतार–चढ़ाव में नहीं आता। कहा भी ऐसा ही गया है कि –

घटे बढ़े क्षण एक में सो तो प्रेम न होय।

जो एक क्षण में घट जाये और दूसरे क्षण बढ़ जाये, उसको प्रेम नहीं कहा जाता। यह प्रेम हर समय एक समान रहता है। जैसे माता का प्यार बच्चे के लिये सदैव एक समान रहता है, उसकी तरह भक्त और भगवान का प्रेम भी एक समान रहता है। भक्त हर समय इस राम के ही, इस मालिक के ही होते हैं। दुख की घड़ी में इनका मालिक कोई और नहीं हो जाता और सुख में कोई और नहीं हो जाता। इनकी ऐसी दृष्टि बन जाती है कि ये इसकी रज़ा में रहकर ही जीवन की यात्रा तय करते हैं क्योंकि ये जान जाते हैं कि यह आना–जाना क्या? यह खोना–पाना क्या? यह सब दातार की ही कृपा है। यह दातार की सब कुछ करने–कराने वाला है, इसलिये सदैव इसके आगे नतमस्तक होते हैं। यही एक रहस्य है, यही एक सार है, आनन्दमय जीवन जीने का, इसलिये आप सन्तों, महापुरुषों ने जिन्होंने इस नाम को प्राप्त किया है, इस अमोलक ज्ञान को प्राप्त किया है, इसकी संभाल करते जायें, इसके एहसास से जीवन जीते जायें और किसी क्षण भी इस मालिक दातार–प्रभु से दूर न हों। हर समय इसी ओर हमारा ध्यान लगा रहे। जब भी हम देखें तो ज्ञान की दृष्टि से देखें। जहाँ भी विचरण करें इस ज्ञान की दृष्टि को हम हमेशा खुला रखें, अपनाकर रखें क्योंकि ऐसा करने से हमारे मनों में निश्चय ही प्रेम बढ़ेगा, सत्कार बढ़ेगा, करूणा बढ़ेगी। जब सभी अपने नज़र आयेंगे तो फिर घृणा कहाँ होगी? नफरत की गुंजाइश कहाँ होगी। फिर तो प्यार ही प्यार है, प्रेम ही प्रेम है, फिर तो सुन्दर फूल जैसी भावनायें हैं, जो हमेशा सुगन्ध ही देती हैं।

दातार ऐसी मेहर करे, कृपा करे कि हम इस ज्ञान का, इस सच्चाई का अनुकरण करते रहें, अपने व्यवहार के द्वारा, अपने कर्मों के द्वारा। जैसे एक सुई में हम धागा डालते हैं तो वह उस सुई का अनुसरण भी करता है और सुई को खोने भी नहीं देता। जब सुई चलती है तो वह धागा भी उनके साथ–साथ चलता है।

इसी प्रकार यदि ज्ञान का अनुकरण–अनुसरण हो रहा है कर्म द्वारा, तो वह इस सच्चाई (ब्रह्मज्ञान) को खोने भी नहीं देता। जैसे सुई अकेली कहीं पड़ी हो तो हमें ढूंढनी पड़ती है लेकिन अगर उसमें धागा पड़ा हो तो वह एकदम

दिखाई दे जाती है। इसी प्रकार हमारा व्यवहार, हमारा कर्म जब ज्ञान के साथ होता है तो यह सत्य भी ओझल नहीं होता।

सन्तों–महापुरुषों ने हमेशा इसी सच्चाई का ही वर्णन किया है। इन दिनों में आपने जो सच्चाई का, भक्ति का, प्रेम का, भाईचारे का ज़िक्र किया है, वहाँ देश प्रेम की बात भी कही है, देश की अखंडता की बात भी कही है। हमारे देश की संस्कृति में अनेकता ज़रूर है, इस अनेकता के होते हुये भी एकता की भावना से जीवन यात्रा तय करने की प्रेरणा दी गई है। यहाँ केवल नारे या भाषण नहीं दिये गये।

अक्सर लोगों के मन में यह तस्वीर बैठा दी गई है कि यह पंजाबियों का मिशन है। जो ऐसा कह रहे हैं वे यह नहीं जानते कि अगर किसी पगड़ी बांधे व्यक्ति को यह सेवा करने की ज़िम्मेदारी दे दी गई है, अगुवाई करने की ज़िम्मेदारी दे दी गई है तो इससे वह पंजाबियों का मिशन नहीं बन गया है। वे यहाँ आकर देखें कि यहाँ बंगाली भी हैं, महाराष्ट्रियन भी हैं, हरियाणवी भी हैं, और उड़ीसा में रहने वाले भी हैं। ऐसा नहीं है कि जो पंजाब से जाकर उड़ीसा में रहने लगे हैं, वे ही यहाँ आये हैं बल्कि वे लोग भी आये हैं जो उड़ीसा के गाँवों में जन्मे–पले हैं। यहाँ बंगाल से बंगाली परिवार आये हैं, जो बंगला ही बोलते हैं। जो बंगाल की संस्कृति में ही पले हैं। इस प्रकार देश की जो असल तस्वीर होनी चाहिये, वह यहाँ देखने को मिलती है। यहाँ बंगाली और पंजाबी मिलकर बैठे हैं और किसी के मन में भी एक दूसरे के प्रति घृणा नहीं है। यहाँ भाषा की तकरारें नहीं हैं।

धरती पर स्वर्ग

आज दुनिया में जिधर भी नज़र घुमाकर देखते हैं, पाते हैं कि चाहे धरती का कोई हिस्सा हो, अगर वहाँ एक सच्चाई को आधार मानकर जीवन जिया जा रहा है तो वहाँ सुख और आनन्द है। चाहे वह हिन्दोस्तान हो, चाहे अमेरिका हो या कनाडा हो (धरती के किसी एक विशेष टुकड़े से सरोकार नहीं है) दीपक जहाँ भी जलायेंगे, रोशनी ही फैलायेगा। दीपक अगर यहाँ हिन्दोस्तान की धरती पर हम जलायें तो भी रोशनी दे रहा है। वही दीपक अगर हम अमेरिका में

जला दें तो वहाँ भी रोशनी ही देगा। वहाँ भी वह अन्धकार को दूर भगायेगा। दीपक जहाँ–जहाँ पहुँचेगा उसने उजाला ही करना है।

इसी तरह सन्त प्रवत्ति, मानवीय प्रवृत्ति, इन्सानियत जहाँ जहाँ भी हमें देखने को मिलती है वहीं हमें उजाला देखने को मिलता है, हमें वहीं इन्सानियत देखने को मिलती है। इसी तरह मानवीय गुणों का भी अपना प्रभाव है। दानवीय प्रवृत्ति जहाँ भी है, वह अन्धकार ही फैला रही है। अगर दानवीय प्रवृत्ति है तो हिन्दुस्तान में भी शहर, कस्बे, प्रान्त, चैन की नींद नहीं सो सकते। सब भय के वातावरण में जीते हैं। एक नारा बुलन्द हो जाता है तो सभी थर–थर काँपने लगते हैं। विडम्बना यह है कि वह नारा भी परमात्मा का नाम लेकर ही लगाया जाता है। उस नारे में भी परमात्मा का नाम शामिल होता है। भगवान के नाम से नारा हो, जिसमें गुरु–पीर–पैगम्बरों के नाम शामिल हों तो उनसे भला दूसरे क्यों काँपें? भय का वातावरण इसलिये होता है क्योंकि नारे में नाम तो भगवान और गुरु–पीर–पैगम्बरों के होते हैं लेकिन मन में घृणा होती है, नफरत होती है। जुल्म करने की भावना होती है। उजाड़ने की भावना होती है। वह मानवीय प्रवृत्ति नहीं दानवीय प्रवृति कहलाती है।

दानवीय प्रवृत्ति चाहे हिन्दोस्तान में हो या कहीं और, जहाँ भी भगवान राम का नाम लेकर, खुदा का नाम या अल्लाह का नाम लेकर अगर हम जुल्मो–सितम करते हैं तो निश्चय ही परमार्थ के रास्ते से दूर हट रहे होते हैं। फिर इन्सान, इन्सान नहीं रह जाता, दानव ही हमें देखने को मिलता है। इसी प्रकार किसी और मुल्क का ज़िक्र भी कर सकते हैं, वहाँ भी अगर हज़रत ईसा मसीह जी का नाम लेकर, गॉड का नाम लेकर या खुदा का नाम लेकर इन्सानों पर जुल्मों–सितम किये जाते हैं तो वहाँ भी हमें कांटे ही नज़र आते हैं। जैसे सुबह और शाम हर स्थान पर हम देख रहे हैं, इसी प्रकार यह घृणामय अन्धकार, यह नफरत रूपी अन्धकार भी कौन से युग में नहीं था? अब हम कलयुग को कोस रहे हैं। कलयुग को, जिसे हम सबसे नीचे दर्जे का युग मान रहे हैं तो क्या सतयुग, जिसे हम कहते हैं सुनहरी युग, क्या उस युग में यह अन्धकार और सवेरा नहीं होता था? क्या उन युगों में अन्धकार रूपी हिरण्यकश्यप नहीं था? क्या उन युगों में प्रहलाद रूपी सवेरा नहीं था? क्या उन युगों में कंस रूपी अन्धकार नहीं था और भगवान कृष्ण रूपी सवेरा नहीं था? हर युग में हम देखते चले आ रहे हैं कि अन्धेरा और सवेरा सदा रहे हैं। गुरु नानक देव जी के बारे में जब 'मिटी धुन्द जग चानण होया' की

बात हम कहते हैं, वहाँ चक्की पिसवाने वाले भी कहीं चाँद पर तो नहीं बैठे थे। इस धरती पर थे। उसी समय में थे।

कहने का भाव है कि ऐसी प्रवृत्तियाँ निरन्तर हमें देखने को मिल रही हैं। ऐसे समय भक्तजनों का क्या कार्य होता है? ज्ञानीजनों सन्तों का कार्य होता है कि अन्धकार रूपी दानवीय प्रवृत्ति जो हैं उनमें कमी आये और रोशनी बढ़ती चली जाये। यह निश्चित ही है कि जितनी रोशनी बढ़ती है, उतना ही इन्सान चैन और सुकून लेता जाता है। जितना-जितना अन्धकार जहाँ-जहाँ है वहाँ-वहाँ ही हमें ठोकरें देखने को मिलती हैं। हम सड़क से गुज़र जायें। अगर सड़क के ऊपर 10 खम्भे लगे हुये हैं और उनमें से पाँच जल रहे हैं तो वहाँ उजाला है लेकिन पाँच बुझे हैं तो वहाँ हम ठोकर खा जाते हैं। अन्धेरे का नुकसान ही होता है। सच्चे मायनों में धर्म वहाँ अपनाया गया है, जहाँ धर्म की परिभाषा को जानकर इस परमात्मा, निराकार, अकालपुरख के साथ इस रमे हुये राम को जानकर इसके साथ नाता जोड़कर जीवन जिया जा रहा है। फिर वह चाहे पंजाब में हो, हरियाणा में हो, कहीं भी हो। हमें हर जगह ऐसी खुशी, ऐसा आनन्द देखने को मिलता है। यहाँ भी आप सत्य को सुदृढ़ करने के लिये एकत्रित हुये हैं कि हमने अंधकार फैलाने का कार्य नहीं करना बल्कि रोशनी फैलाने का कार्य करना है। हमने संसार में इन्सानियत को पेश करना है, इन्सानियत को मजबूत करना है। हमने दानवता को बढ़ावा नहीं देना। हमने संसार में फूल बिखेरने हैं, कांटों में इजाफा नहीं करना है। सत्य को मज़बूत करने के लिये ही यहाँ आप सभी एकत्रित हुये हैं, और यही प्रार्थनायें भी कर रहे हैं कि दातार ऐसी कृपा करे कि हम सही मायनों में कार्य कर पायें। हम खुद इन्सान बनकर ही जियें और इसी इन्सानियत का हम स्थान-स्थान पर प्रसार करते चले जायें क्योंकि अगर इन्सानियत स्थापित होगी तो वास्तव में इस संसार को हम बढ़ता-फूलता देख सकते हैं। आज तरक्कियों के कारण हम एक आधुनिक रूप इस युग को दे रहे हैं। बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें तो बन रही हैं, ऊँची से ऊँची बन रही हैं, आराम के सामान बढ़ रहे हैं। बिल्डिंग की ऊँचाइयाँ तो बढ़ रही हैं, बाकी चीज़ें भी बढ़ रही हैं लेकिन अगर हमारी सोच, हमारी प्रवृत्ति नीची हो तो उसको हम तरक्की और सच्ची आधुनिकता का नाम नहीं दे सकते। वास्तविक आधुनिकता तो तभी होगी जब हम सचमुच एक सही इन्सान बनकर जियेंगे। दूसरों के भले के लिये हम प्रार्थनायें करें। दूसरों को सुन्दर देन दें। अगर हम सोचें कि हम कहीं कुछ गिरा देंगे तो हम बड़े हो जायेंगे तो गिराने वाले बड़े नहीं हुआ करते हैं। एक निर्मित को ध्वंस करके अगर हम कहें कि

यह आधुनिकता है तो फिर यह हिटलर जैसी आधुनिकता होगी। अगर हम खुद को प्रगतिशील कहते हैं, अगर सिर्फ चलते रहने को प्रगतिशील कहना है तो फिर कोल्हू का बैल, जो कभी रुकता ही नहीं है, बड़ा प्रगतिशील हुआ। वह तो हर समय चलता ही रहता है।

कहने का भाव है कि जब हम उजाले से युक्त होकर, आँखें खोलकर चलते हैं, सभी आवरण हटा देते हैं, सभी दीवारें गिराकर हम मानव बनकर जीवन जीते हैं तो निरंतर हम बड़े काम करेंगे। एक–दूसरे को सुख–चैन देने वाले बनेंगे। तमाम शक्तियाँ जनकल्याण के लिये लगेंगी। उसी भाव से इस्तेमाल होंगी। आप भक्तजन–सन्तजन यही प्रयास कर रहे हैं और जहाँ भी ऐसे कार्य होते दिखाई देते हैं तो भक्तजन उसमें अपना योगदान भी देते हैं और ऐसे कार्य की श्लाघा भी करते हैं। जैसे पहले दास ने कहा है कि उन मुल्कों में भी जब हम देखते हैं कि कुछ दूरियां समाप्त होती हैं, दीवारें गिरती हैं तो हम एक–दूसरे के करीब आते हैं। वह एक खुशी का कारण होता है। दूरियां समाप्त हुईं, तो मुल्क करीब आये। जातियाँ जो ऊँची हुई थीं, उनकी दीवारें गिरीं तो वो करीब आईं। इसी तरह से भाषाओं की दीवारें गिरीं तो करीब आये। संकीर्णताओं की दीवारें जब गिरती जाती हैं और इन दीवारों को गिराने में जो सहयोग देते हैं, जो पहल करके अपना योगदान देते हैं, निश्चय ही वे सराहनीय होते हैं।

भक्तजन–महापुरुष–सन्तजन यही कार्य युगों से करते आ रहे हैं और जो भी इस कार्य में अपना योगदान देते हैं, उन्हीं को विवेकशील माना गया है। वही विवेक से कार्य कर रहे होते हैं। वही वास्तव में इस धरती को सजाने–संवारने का कार्य कर रहे होते हैं। यही कार्य करने योग्य है और इसी कार्य को प्रत्येक ने करना है। हर किसी ने सच्चाई के साथ, उत्तम भावना से यह कार्य करना है ताकि चारों तरफ हमें खिली हुई गुलज़ार, खुशी, चैन नज़र आये। इसके लिये निश्चय ही भक्तजनों–सन्तजनों ने ज्ञान की दौलत को अपनाया है, उसी दौलत के सहारे सारे संसार को मालामाल करना है।

हिन्दोस्तान के बारे में हम कहते हैं कि अनेक सन्तजन, गुरु–पीर–पैगम्बर इस धरती पर आये तो उनकी शिक्षा रूपी दौलत हमें प्राप्त हुई। उस दौलत को, उस विरासत को अगर हम इस्तेमाल में लायें तो उसके कारण ही हम सही मायनों में शाह कहलाये जा सकते हैं। जो दौलत महापुरुषों–सन्तजनों ने इस

धरती को प्रदान की, अगर उस दौलत को हम अपनाते नहीं बल्कि उसका दुरुपयोग करेंगे तो हम अविवेकशील होंगे। हम चारों तरफ हाहाकार मचाने वाले बनेंगे। अगर ऐसी दौलत से युक्त होकर अमीर होने का प्रमाण देते चले जायें, शाह होने का प्रमाण देते चले जायें, तो संसार के लिये सुखदायी सिद्ध होंगे। केवल बोलों से कुछ नहीं होगा। बोलों से तो हम दोहरा देंगे, वेदों में लिखा है पढ़कर सुना देंगे, शास्त्रों ने लिखा है हम पढ़कर, बोलकर सुना देंगे। लेकिन उसमें कोई बात बनने वाली नहीं है। यहाँ इस बात की ओर ध्यान दिलाया जा रहा है कि वैसा कार्य हमने करना है। केवल बोलों द्वारा नहीं, वास्तविक कर्म के द्वारा करके दिखाना है कि वाकई हम उन सन्तजनों–भक्तजनों, गुरु, पीर, पैगम्बरों के प्रति सही मायनों में समर्पित हैं। सही मायनों में उनका आदर, सत्कार करते हैं और हम पूरी तरह से उनके उपदेशों को महत्ता प्रदान करते हैं तो यह हमारे कर्म के द्वारा ही होगा। आज इसी कर्म, इसी व्यवहार की देश भर में ज़रूरत है। धरती के हर हिस्से में रहने वाले को ज़रूरत है। ताकि हमें चारों तरफ महकता हुआ वातावरण देखने को मिले और हम कह सकें कि वाकई यह धरती रहने लायक है। और इस धरती को रहने लायक बनाने के लिये इन्सानों ने ही योगदान देना है। केवल दो पाँव वाले, दो हाथ वाले चलते फिरते इन्सानों ने नहीं, बल्कि उन्होंने जो इन्सानियत के गुणों से युक्त हैं, जो सन्तों के आदेशों–उपदेशों से युक्त हैं, वे गुण धारण करे धरती को सजाने–संवारने का कार्य करते चले जायें और स्वर्ग का नजारा बनाते चले जायें।

आज यही प्रार्थना, याचना, अरदास आप सभी के ध्यान में भी है और यही गीतों, कविताओं, व्याख्यानों के द्वारा प्रकट भी कर रहे हैं चाहे हिन्दी, पंजाबी या किसी और भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं लेकिन भाव एक ही है कि वास्तविकता में इस भावना की, इस अवस्था की आज भी बहुत ज़रूरत है और इस भावना से युक्त होकर ही आगे से आगे बढ़ते चले जायें ताकि चारों तरफ हमें एक चैन का स्वर सुनाई दे। ऐसी महक प्राप्त हो, जहाँ सुन्दर स्वर हमें सुनने को मिलें। हम सुबह भी, शाम भी, दोपहर भी चैन से बिता सकें। इसके अलावा और कोई साधन नहीं है, और कोई तरीका नहीं है। इस भावना से युक्त होकर सभी अपना योगदान देते जायें और हर प्रकार की खुशियों के भागीदार बनते जायें।

भक्तजनों का जीवन महान रहा है। उन्होंने महान देन दी है। आज उसी की ज़रूरत हर इन्सान को है ताकि सभी इस निरंकार प्रभु के साथ अपना नाता जोड़कर इन्सानियत के प्रति आस्थावान हो सकें। एक मानवता का रुतबा बुलन्द कर सकें। हमेशा ऐसे प्रयास कर सकें, जिसमें अपनी भी भलाई हो और दूसरों की भी भलाई हो। इन्सान जब इस सत्य से दूर निकल जाता है तो अच्छाइयों से दूर निकल जाता है। हम देखते हैं कि इससे इन्सान ऐसा रूप धारण कर लेता है जो हानिकारक होता है। जो अपने लिये और दूसरों के लिये भी दुख व बेचैनी का कारण बनता है। दातार प्रभु परमात्मा ने इन्सान को उत्तम जन्म दिया, सोचने–समझने की ताकत दी, लेकिन सभी योनियों से श्रेष्ठ होकर भी इसने राह अपनाई नादानी वाली। इसने अविवेक से काम लिया और दातार की दी हुई सभी सामर्थाओं को लालसा से भरपूर होकर इस्तेमाल किया। स्वार्थपरता (selfishness) तथा स्वार्थलिप्सा के साथ तंग दायरों में बंध कर इनका इस्तेमाल किया। उनके नतीजे में हमने देखा कि उसके कारण जुल्मो–सितम भी हुये और अभी भी हो रहे हैं। घरों को उजाड़ने का काम होता हुआ हम देख रहे हैं। इस प्रकार इन्सान ने प्रभु की दी हुई सामर्थाओं का दुरुपयोग किया है और इसने दूसरों की भलाई की अपेक्षा दूसरों के नुकसान को अधिक सोचा है। इसलिये महापुरुषों सन्तजनों ने यही पैगाम दिया, यही आवाज़ दी कि हे इन्सान! तू अपने लिये जीता रहता है। अपनी लालसाओं की पूर्ति की ही तुझे फिक्र रहती है। तू भूल जाता है कि तू अकेला ही इस संसार में नहीं है, तेरे उत्तरदायित्व का फैलाव बहुत अधिक है। तू इस धरती का बाशिंदा है। प्रभु–परमात्मा के मानव परिवार का अंश है। तेरे उत्तरदायित्व कहीं आगे बढ़ जाते हैं। उनकी अनदेखी ज़रूर हुई। अनदेखी के कारण तूने ऐसे कार्य किये हैं जो नुकसान वाले कार्य हैं। जब अपनी लालसा की पूर्ति में लगा रहता है तो बड़े से बड़े उपद्रव हो जाते हैं। बड़े से बड़े उपद्रव करा दिये जाते हैं। किसी ने कहा है कि युद्ध हुआ करते हैं। युद्ध का कारण क्या है? तो कहने वाले कहते हैं कि युद्ध के कारण नहीं हुआ करते, युद्ध के तो परिणाम हुआ करते हैं। कारण तो कोई भी हो सकता है। हम अक्सर इन्हीं मुल्कों में ऐसी आवाज़ सुनते हैं कि घरेलू समस्यायें (Domestic Problem) हैं तो कोई युद्ध छेड़ दिया। यह अक्सर हम पढ़ते हैं, सुनते हैं तो कारण तो कोई विशेष नज़र नहीं आता। कारण समझ में आये या ना आये लेकिन परिणाम तो सभी को समझ आते हैं। ये एक जैसे ही हुआ करते हैं, कारण भले ही कोई भी हो उसमें हमें खुशी या हंसी नहीं मिलती है, उसमें हाहाकार ही मिलती है। वहाँ हमें माता–बहनों के सिन्दूर मिटते हुये ही देखने को मिलते हैं। युद्ध के परिणाम पूरी मानव जाति के लिये हानिकारक हुआ करते हैं।

इसलिये महापुरुष कहते हैं कि इन्सान तू अपनी लालसा की तरफ ध्यान न दे। तू ध्यान दे तो दूसरों को सुख देने की तरफ, दूसरों के कल्याण की तरफ। ऐसे कार्यों में ही अपनी सामर्थ्य लगा। सोचने की ताकत तेरे पास है। तू ऐसी योजना बना जिससे कि सभी चैन से सो सकें, आराम से जीवन जी सकें। अगर प्रभु ने तेरे तन को ताकत प्रदान की है तो उस ताकत को लगा दें, संवारने के लिये। डूबते हुये को उबारने के लिये, गिरे हुये को उठाने के लिये। रोते हुये के आँसू पोंछने में इन हाथों

का इस्तेमाल कर लें। डूबते हुये को किनारे लाने का काम कर लें। इन हाथों से किसी को धक्का देने का काम न लें। दातार प्रभु ने धन दिया है, इस धन का भी सदुपयोग कर। इस धन को भी लगा दे परोपकार में। इसे दूसरों की भलाई में लगा दे। इस प्रकार तू एक दूसरे को सुख और चैन देने वाला बन जायेगा। रसना दी है प्रभु–परमात्मा ने, इससे भी मीठे बोल बोल ले। कीर्ति बढ़ाने वाले शब्दों का उच्चारण कर ले। महापुरुषों की वाणी का उच्चारण कर। इस जुबान से कहीं आग न लगा। इस जुबान से कहीं गहरे घाव न दे जो कि भर भी न पायें। तो इस प्रकार दातार की दी हुई तमाम सामर्थाओं क्षमताओं का तूने सदुपयोग करना है। इसलिये महापुरुष कहते हैं कि इन्सान तुझे इस समर्थ के साथ जुड़ना होगा। महापुरुषों के अनुसार काम करना होगा। इस प्रकार विशालता का प्रमाण देना होगा। अगर हम अपने तक सीमित हैं, हममें लालसायें और खुदगर्ज़ियां हैं, और उनके कारण प्रभु की दी हुई शक्तियों का दुरुपयोग है तो उसके लिये इन्सान तुझे विशालता में आना होगा। तंग दायरे में, अपने आप ही अगर सीमित रहेगा तो समाज और देश का नुकसान होगा बल्कि सारी मानव जाति का नुकसान होगा। कहने वालों ने कहा है कि जो केवल अपने लिये जीता है उसके पास समाजनाशक दुर्गुण हुआ करते हैं और जो दूसरों के लिये जीता है उसके पास समाजपोशक सद्‌गुण हुआ करते हैं। दुर्गुण से, एक से बढ़कर एक नुकसान हो रहा है, शोषण हो रहा है जबकि सद्‌गुणों से पोषण हो रहा है।

महात्माओं का जिक्र आप शुरू से सुनते आ रहे हैं। गुरु, पीर, पैगम्बरों का जिक्र हम सुन भी रहे हैं और धर्म ग्रन्थों में भी पढ़ रहे हैं। उन तमाम महात्माओं, गुरु, पीर, पैगम्बरों ने औरों के लिये जीवन जिया, इसलिये उन्होंने पोषण किया समाज का। उन्होंने समाज को खड़ा किया और संसार को सुन्दर देन दी। आज जहाँ भी हमें उपद्रव दिखाई देते हैं, नुकसान दिखाई दे रहा है उसके पीछे इन्सान की नादानी और तंगनजरी और खुदगर्ज़ी ही है। उसकी इन भावनाओं के कारण निरन्तर खुद भी दुख पा रहे हैं और दूसरों को भी दुख दे रहे हैं। इन्सान दूसरों को लड़ा रहा है। भ्रमजाल फैलाकर दूसरों के मन में शक–शुबह पैदा करके उनकी भावनाओं का दुरुपयोग हो रहा है। विशेषकर यह काम धर्म की आढ़ में किया जा रहा है। धर्म का नाम देकर ऐसी भावनाओं (Sentiments) को कदम–कदम पर उभारा गया है। इसके पीछे धर्म को स्थापित करने की भावना नहीं बल्कि खुदगर्ज़ी की भावना है, लालसा–पूर्ति की भावना है। इसलिये धर्म का भी दुरुपयोग किया गया है। एक–दूसरे के प्रति नफरत और घृणा पैदा की जा रही है। इससे हैरानी होती है कि इन्सान ने महापुरुषों–सन्तजनों के स्थापित किये गये धर्म को क्या रूप दे दिया है? उन्होंने जो निरोल धर्म स्थापित किया, वह था – मानव धर्म, एक इन्सानियत वाला धर्म। लेकिन उस निरोल, निर्मल धर्म को क्या रूप दे दिया गया है? जो आज सबके सामने है। बहुत ज़्यादा कुछ कहने की हम आवश्यकता महसूस नहीं करते। उसके असर से हम अपने आपको बचा नहीं पा रहे हैं। इस कद्र वे लपटें सबके ऊपर असर कर रही हैं। महात्माओं ने तो इन्सानियत के धर्म को निर्मल रूप ही दिया है। महात्माजन, भक्तजन, सन्तजन इसी धर्म का प्रचार–प्रसार करते हैं। किसी सम्प्रदाय

या साम्प्रदायिकता को धर्म नहीं बताते बल्कि मानवता को ही असली धर्म बताते हैं। श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज के शब्द कि –

मानुष की जाति सभै ऐकै ही पहचानबो।

अर्थात् मानुष की जाति एक है और येही पहचान हमने रखनी है। मानुष की जाति एक ही है। अनेक जातियां नहीं हैं। मानव जो पाँच तत्व का पुतला है इसे पैदा करने वाला एक प्रभु परमात्मा है। कहते हैं कि –

सब आये इस एक में डाल पात फल फूल।
कबीरा पीछे क्यों रह गये पकड़ा जब मूल।।

पत्तियाँ–टहनियाँ फल–फूल आदि एक पेड़ के अंग हैं लेकिन उसका बीज तो एक ही है। टहनियों के रंग अलग–अलग हैं, पत्तों के रंग अलग हैं, फल के रंग अलग हैं, फूल के रंग अलग हैं, उनका स्वरूप अलग हैं, उनके गुण अलग हैं, लेकिन यह नहीं कह सकते कि इस पेड़ की जो टहनी है उसका बीज कोई और है।

सब आये इस एक में डाल–पात, फल–फूल।

भाव यह है कि मूल एक ही है। एक ही परमात्मा है और यह इन्सान इसी की सन्तान है, इसी का ही परिवार है। तो यहाँ महापुरुषों–सन्तों ने इसीलिये कहा है कि मानव की जाति एक ही है। यह एक चाहे सतयुग में बताया गया, त्रेता में बताया गया या द्वापर में या कलयुग में बताया गया लेकिन इन्सान ने इस ओर ध्यान नहीं दिया बल्कि अपनी उन्हीं इच्छाओं की पूर्ति में लग गया। उसने धर्म की शिक्षाओं को भी उसी रंग में रंग कर पेश कर दिया।

दास अक्सर कहता है कि गाय, निरोल–निर्मल दूध ही दिया करती है। गाय की तरफ से तो कोई कसर नहीं हुआ करती। लेकिन वही दूध जब हमारे घरों में पहुँचता है, हमारी दहलीज पर पहुँचता है तो हम सभी जानते हैं कि उसका क्या रूप होता है। उसमें पानी अधिक मिला दिया जाता है या क्रीम निकाल ली जाती है। कहने का भाव कि महापुरुषों ने तो विशुद्ध धर्म प्रदान किया। अशुद्धता तो बाद में आई। कोई यदि कहे कि हजरत ईसा मसीह जी ने ईसाई धर्म को स्थापित किया तो यह ठीक नहीं जान पड़ता। उन्होंने तो मानव धर्म स्थापित किया। हज़रत मुहम्मद साहब ने भी इन्सानियत का ही धर्म स्थापित किया। श्री गुरुनानक देव जी महाराज ने भी मानवता का ही धर्म स्थापित किया। श्री गुरुनानक देव जी महाराज ने भी मानवता का ही धर्म स्थापित किया। कहने का भाव कि सभी सन्तों ने एक इन्सानियत का धर्म ही स्थापित किया। इसीलिये तो अपने वचनों में कह रहे हैं कि –

पाँच तत्व का पुतला नानक मेरा नाऊ।

कहते हैं कि मैं पाँच तत्व का पुतला हूँ और नाम नानक रखा है परिवार वालों ने। मानवता का संदेश देने वाले, ज्ञान दृष्टि प्रदान करने वाले एक ही निराकार के भक्त हों, तो इससे बढ़कर क्या धर्म होगा? मानवता का धर्म ही हर सन्त ने स्थापित किया है। इसी के लिये उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित किया। अनेक प्रकार की विपदाओं का सामना किया, अनेक प्रकार की घृणा का सामना किया, बदनामियों का सामना किया लेकिन उन्होंने सदा मानव धर्म को स्थापित करने की ही चेष्टा की और वही संदेश हर इन्सान को दिया। अभी भी उसी धर्म को अपनाने की प्रेरणा दी जा रही है। यह धर्म हम सही मायनों में अपना लें और इसे कोई और रंग दिये बगैर, निरोल इसको इसके असली स्वरूप में रखें ताकि इन्सान और इन्सान में नज़दीकी पैदा हो। सब विशालता के साथ दृढ़ हो जायें।

हमें संकीर्णता से उभरना है। जब तक विशालता में नहीं आयेंगे तब तक हम धर्मी नहीं, अधर्मी ही होंगे। हम कोई सुन्दर देन न दे पायेंगे। समाज, देश, संसार की हम हानि ही करते जायेंगे। साध संगत! महापुरुष कहते हैं कि धर्म के नाम पर इन्सान तूने कोई ऐसा कार्य नहीं करना है जिससे तेरा नुकसान हो तेरा पतन हो। जो इस परिणाम को जान लेते हैं, वे निरन्तर निकल पड़ते हैं इन्सान के मन से भ्रान्तियाँ निकालने के लिये, एक–दूसरे को करीब लाने के लिये, एक दूसरे की भलाई करने के लिये संसार पर वे उपकार करते जाते हैं। साध संगत, आज भी यहाँ सन्तजन महापुरुष यही प्रयास कर रहे हैं। आज इसकी ज़रूरत है क्योंकि धर्म के नाम पर जुल्मो–सितम हो रहे हैं। इसके कारण अनेक लोगों को आग में जलना पड़ रहा है। उनका दर्द लिये हुये सन्तजन हमेशा यही चेष्टा करते हैं कि हम वास्तविक धर्म का पालन करते चले जायें।

यह कार्य जिस जिसने भी किया, वही वास्तव में श्लाघा योग्य हुआ। भ्रान्तियाँ फैलाने में तो देर नहीं लगती। भ्रान्तियाँ तो कदम–कदम पर फैलाई जाती हैं। दूरियाँ पैदा करने में देरी नहीं लगती, दूरियाँ खत्म करने में देरी लगती है। जोड़ना मुश्किल होता है, खड़ा करना मुश्किल होता है। यह मुश्किल कार्य ही भक्तजन किया करते हैं।

संसार में सभी भक्तजनों ने मानवीय भावनाओं को ही उजागर किया है और वास्तव में ऐसी ही भावनाओं को विस्तार मिलना चाहिये। अगर हम कहें कि गन्दगी या बदबू को विस्तार दें तो पूरा वातावरण बर्दाश्त से बाहर हो जायेगा। इसलिये ही वातावरण में अच्छाइयाँ और नेकियाँ बढ़ाने में ही समझदारी है। दास की अभिलाषा भी यही है कि इन्हीं भावनाओं को बढ़ावा मिले। इसी प्रकार इन्सान को यही आवाज़ निरन्तर दी जा रही है कि हे इन्सान! तूने ऐसा कर्म करना है कि जिस से तुम्हारी अपनी भी शोभा बने और औरों के लिये भी तुम सुख का कारण बनो। जितनी धर्मग्रन्थों, वेदों, शास्त्रों, महापुरुषों की वाणियाँ हैं वे किसी ऊँट या घोड़े के लिये नहीं

हैं। उन्होंने जो कुछ भी सम्बोधन किया है, इन्सानों को ही किया है। उनका सम्बोधन हर इन्सान के लिये है। इन्सानी जन्म अपनाया है तो फितरत भी इन्सानों वाली अपनायें। इन भावनाओं से युक्त होंगे तो निश्चय ही इन्सानियत का रुतबा बुलन्दी को छुयेगा। इन्सान, मानव से देवता हो सकेगा। देवता से इस मालिक का रूप हो जायेंगे। लेकिन आज अपनी मनमानियाँ इतनी ज़्यादा हो चुकी हैं कि हम उन आदेशों को सुन तो लेते हैं लेकिन उनकी कद्र नहीं करते। उन पर चलते नहीं। गुरु, पीर, पैगम्बरों को मानते तो हैं, उनके प्रति आस्था व श्रद्धा भी रखते हैं लेकिन उनकी शिक्षाओं का अनुकरण–अनुसरण करने के लिये कभी भी हमारे मन में संकल्प नहीं हुआ। हम अपनी मनमति और लालसाओं की ही पूर्ति करते गये हैं। हमारे जीवन में ऐसा प्रगट होता है जैसे वह कहावत भी मशहूर है कि पँचों का कहा सिर माथे पर, परन्तु यह नाली (पतनाला) यहीं की यहीं रहेगी। हम उन गुरु, पीर, पैगम्बर, महापुरुषों को मानने वाले तो कहलाना चाहते हैं लेकिन उनकी मानने को तैयार नहीं है। हम इन महापुरुषों के जन्म–उत्सव को मना लेते हैं, पीर–पैगम्बर जहाँ–जहाँ से गुज़रे हैं उन स्थानों की पूजा भी कर लेते हैं, उनकी लिखी हुई पुस्तकों का कई–कई दफा पाठ भी कर लेते हैं लेकिन सिर्फ इतना पर्याप्त नहीं है। अगर हम उनके भक्ति भाव को न अपना सके तो अपने आपको भक्त मानने का दंभ बेकार है। उन महापुरुषों ने संसार को येही कहा कि –

पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।

अगर हमने पोथियाँ तो पढ़ लीं लेकिन सार को नहीं जाना तो हम कहलाने वाले पंडित बन गये लेकिन अगर प्रेम नहीं सीखा तो वास्तविक पंडित नहीं हो सकते। दास ने पहले भी मिसाल दी थी। एक इन्सान किताब पढ़ रहा था। किताब थी – सहनशीलता की। घर का एक सदस्य बुलाने आया और कहा कि खाना खा लो। तो उसने कहा कि थोड़ी देर रुक जाओ, पढ़ना बहुत ज़रूरी है। थोड़ी देर बाद वह फिर बुलाने आया, कहने लगा कि खाना खा लीजिये। समय बहुत हो रहा है। तो कहने लगा कि थोड़ा और इन्तज़ार कर लो। दो–तीन बार ऐसा हुआ। जब चौथी बार वह खाने को कहने आये तो उसने उठाकर वह मोटी किताब आने वाले के सिर पर फेंक दी और उसे लहूलुहान कर दिया। सहनशीलता की बातें किताब में ही बंद रह गईं। कहने का भाव यही है कि आज हम पढ़ने–पढ़ाने को ही सब कुछ मानकर चल रहे हैं। जैसे कबीर जी कहते हैं कि मैं तो समझाता था कि पढ़ना–पढ़ाना ही काफी है। इसी से हम महान भक्त हो जायेंगे लेकिन जब तक भक्ति नहीं है, वैसे भाव नहीं हैं, तब तक पढ़ने–पढ़ाने की क्या कीमत है। बुल्लेशाह जी के वे शब्द दास अक्सर दोहराता आ रहा है। वे कहते हैं कि –

पढ़ पढ़ इल्म हजार किताबां।
कदे अपने आप नूं पढ़या नहीं।
जा–जा पढ़दे मंदिर मसीती।

कदे मन अपने विच पढ़या नहीं।

उन महात्माओं ने स्पष्ट बातें कही हैं। उन्होंने जो महसूस किया, वही कहा और इन्सान की भलाई के लिये कहते रहे। वो सब सत्य के मार्ग पर चलने वाले और भक्ति से युक्त थे। किसी के प्रति वैर भावना न रखते थे। वे किसी की निंदा करने के लिये ऐसे वचन नहीं कह रहे बल्कि इन्सान को समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि इन्सान तूने बहुत इल्म तो पढ़ लिया लेकिन तूने अपने आप को नहीं पढ़ा। इल्म के अनुसार कर्म न कमाया। कभी तूने अपने में देखा ही नहीं कि तेरे मन की क्या अवस्था है? पढ़ा तो है कि कोई जाति–पाति नहीं है, हरि को भजे सो हरि का होई। पढ़ा कि –

जाति का गरबु न करीअहु कोई।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा।।

लेकिन कह रहा है कि मैं क्या जाति–पाति से निकल सकता हूँ? मैंने तो यह मान्यता माननी ही है। भगवान राम अगर शबरी को अपना रहे हैं तो वह लीला तो मैं देख भी लूँगा, दिखा भी लूँगा, चर्चा भी कर दूँगा लेकिन भला किसी को अछूत मानने से कैसे दूर रह सकता हूँ? यही विडम्बना है। अपने आप से ही धोखा किया जा रहा है। महापुरुषों, सन्तजनों, भक्तजनों को इसीलिये यह सब कहने की आवश्यकता पड़ी। बुल्लेशाह जी भी गली–गली इसलिये ये आवाज़ें देते रहे कि तू एक–दूसरे को दूर करने वाली दीवारों को गिरा दे। उन सभी का एक ही कथन है कि राम और रहीम एक ही हैं। कबीर जी ने इसका बयान दिया। कहते हैं कि –

काशी काबा एक हैं, एक हैं राम रहीम।
मैदा एक पकवान बहु बैठ कबीरा जीम।

इन महात्माओं ने जो ये संदेश शास्त्रों में दिये हैं, हमने उनको हमेशा कानों से सुना, मन से नहीं सुना। हमारी जो जीवन की यात्रा है, इसे किस प्रकार तय कर रहे हैं और क्या देन दे रहे हैं, वह आज सबके सामने है। यहाँ यही याद दिलाने की कोशिश की जा रही है कि हमने महात्माओं के वचन पढ़ने भी हैं, श्रद्धा से पढ़ाने भी हैं, सुनने भी हैं और सुनाने भी हैं लेकिन पूर्णता तभी होगी जब जो काम करने के लिये उन्होंने कहा है, वो काम भी हम करेंगे। असलियत अगर हमारे हिस्से में न आई तो हम कंगाल ही रहे और कंगाल ही चले जायेंगे। महात्माओं के मन में परोपकार की भावना रहती है और वे यही चाहते हैं कि सभी इन्सान इस दौलत से मालामाल हो जायें। इस लोक की यात्रा को भी सुखद बना लें और परलोक भी सुहेला कर लें। महात्मा चाहे कहीं भी पैदा हुये हों, सबने इस एक प्रभु–परमात्मा से नाता जोड़ने की ही बात कही है कि इन्सान तू इसके साथ जुड़ जा।

इन्सान तू जिससे बिछड़ा हुआ है इसके साथ जुड़ जा। एक अल्लाह, गॉड, राम, रहीम है, जिसके साथ जुड़ने की बात कह रहा है। कहते हैं कि –

है निकटे सूझे नहीं धृग–धृग ऐसी जिन्द।
तुलसी इस संसार को भया मोतिया बिन्द।

अज्ञानता के कारण ही इन्सान परमात्मा से दूर है। इन्सान इसीलिये ये भेद कर रहा है। नामों के बंधन में उलझकर रह गया है। यही अज्ञानता है। यही अज्ञानता का अन्धकार है। वियोग और दूरी है जिसके कारण यह राम को जुदा और अल्लाह को जुदा मान रहा है। इस एक के साथ जुड़ जायेगा तो ये तेरी सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जायेंगीं और तू जान जायेगा कि वाकई परम सत्ता एक है। एक परमपिता का बोध करने की बात ही कहीं जा रही है। परमात्मा को सात आसमानों के ऊपर नहीं बताया जा रहा, निकट बताया जा रहा है। निकट ज़रूर है लेकिन सूझ नहीं रहा है। इसलिये ऐसा है जैसे मोतियाबिंद किसी की आँख के सामने आ जाये तो करीब वाली वस्तु भी कोसों दूर लगने लगती है। महापुरुषों, गुरु, पीर, पैगम्बरों ने यही इन्सान को सन्देश दिया कि प्रभु–परमात्मा, अकालपुरख के साथ अपना नाता जोड़ ले ताकि ये तेरी सारी भ्रान्तियाँ जाती रहें। उन्होंने यही पैगाम हर इन्सान को दिया है कि इन्सान, तू जाग जा। इस गफलत की नींद से उठ जा और इस सत्य रूपी हीरे को प्राप्त कर ले। तेरा इस संसार में आना सफल हो जाये। इससे तेरा यही जीवन सफल, सहज और सुखद भाव से तय हो जायेगा और औरों को भी तू सुख और चैन देने वाला बन पायेगा। आज यही अरदास की जा रही है कि दातार ऐसी कृपा करे कि इन्सान को यह अवस्था प्राप्त हो।

आज इन्सान की तरफ हम देख रहे हैं कि इसी अज्ञानता की वजह से वह अपने तन–मन की ताकत, धन–दौलत का अभिमान कर रहा है। यह जानता नहीं कि ये सब तो प्रभु परमात्मा की देन है। अगर इन्सान अपने आपको इतना बलवान मानता है तो फिर यह बलवान होने पर ऐसा कार्य क्यों नहीं कर पाता कि उसे अपने शरीर पर ही अधिकार हो जाये। एक बाल भी सफेद न होने दे। एक भी झुर्री वह न आने दे अपने चेहरे पर। वह हमेशा निरोगी ही रहे। हम सभी जानते हैं कि यहाँ तो कोई सदा बलवान नहीं रहा है। न ही कोई शरीर हमेशा चलता रहा है। यह तो अमानत है प्रभु परमात्मा की। पाँच तत्वों का पुतला है। इसको इसी रूप में जान लेता है तो अभिमान से बच जाता है। यह भावना होनी बहुत अनिवार्य है। जितनी देर तक सागर को नहीं देखा, तब तक एक बूँद भी अपने आपको सागर ही मानकर चलती रहती है। अभिमान करती रहती है। अभिमान तो सदा इन्सान के लिये नुकसान का कारण बनता रहा है। इसलिये सदा यही भाव रखो कि मालिक तूने दया की है, मुझे मानुष जन्म प्रदान किया है। कृपा करो कि मैं इस ताकत को सदुपयोग करूँ और

कभी भी मन में कर्त्ता भाव न आये। कभी भी अभिमान न आये। इसी तरह महापुरुषों, सन्तजनों ने कहा है कि –

कबीर गरबु न कीजिये देही देखि सुरंग।
आजु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुजंग।।

इन्सान का शरीर रहना नहीं है। तभी तो कहते हैं –

राम गइओ रावनु गइओ,
जा कउ बहु परवार।।

महात्मा कहते हैं कि जो बना है उसने तो गिरना ही है। इन्सान! तूने इस चीज़ का एहसास रखना है कि यह तेरा शरीर हमेशा रहना नहीं है। तो काहे का तू झूठा अभिमान करता है। रावण और हिरण्यकश्यप भी इसी भूल में पड़े रहे और प्रभु को चुनौतियां देते रहे। अभिमान के शिकार होकर अपने ही पतन के वे कारण बने। तन का अभिमान झूठा है। धन को भी अगर अपना मानकर चले तो यह भी एक नादानी है। महापुरुष, सन्तजन यही कहते हैं कि इन्सान, धन तो तुझे गुजरान के लिये मिला है। यह अभिमान करने के लिये नहीं है और न ही यह दुरुपयोग करने के लिये है। यह दातार की कृपा मान कि दातार ने तुझे यह सब कुछ दे रखा है। झूठा मान–अभिमान छोड़ दे। फिर कबीर जी के वचन सामने आते हैं कि –

कबीर गरबु न कीजिये रंकु न हसीऐ कोइ।
अबहु सु नाउ समुद्र महि किआ जानउ किआ होइ।

अभी तो नाव समुद्र में ही है। अभी क्या पता क्या होने वाला हूँ? इसलिये अभिमान छोड़ दे। धन को इन्सानों के काम में लगा दे। अहंकार ठीक नहीं है। जिसको तू मूर्ख समझता है, तो वास्तव में कितना सजग और इल्म वाला हो सकता है, यह तू अन्दाज़ा नहीं लगा सकता। ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं, जहाँ खुद को बहुत समझदार मानने वाला ऐसा कुछ कर डालता है, जिससे प्रकट होता है कि यह तो मूर्खता की हद है। दूसरी तरफ एक मामूली सा काम करने वाला, उसी काम को इतनी सुन्दरता से निभा देता है जो उसकी समझदारी का प्रमाण देता है। साध संगत, कहने का भाव यही है कि उन महापुरुषों ने इन्सान को यही समझाने का प्रयास किया कि इन्सान इस अहं के पर्दे को हटा दे। इस रोग से निजात हासिल कर ले और रू–ब–रू हो जा इस सच्चाई के। इसी का एहसास हमारे मन में रहे और अकर्त्ता भाव हमारे मन में स्थित होता चला जाये। साध संगत, कहने का भाव है कि महात्माओं, सन्तजनों ने गुरु, पीर, पैगम्बरों ने यही कुछ किया है। सन्तजनों ने यही एक आवाज़ भिन्न–भिन्न भाषाओं में दी है।

आज समागम के अवसर पर सत्य के ऐसे भावपूर्ण वचन श्रवण करने को मिले हैं तो इन भावों को निरन्तर हम सुदृढ़ करते जायें। भाईचारे की भावना को और सुदृढ़

करते जायें। यहाँ कवि सज्जनों ने भी पिछले तीन दिनों से इसी बात को दोहराया कि इस सारी मानवता का भला तभी हो सकता है अगर हम मिल–जुलकर रहेंगे। अगर मिलवर्तन की भावना होगी। एक दूसरे के सुख दुख में शामिल होने की भावना होगी, तो फिर ही मानवता का भला हो सकता है। इस मानवता की भावना से युक्त होने के लिये फिर इसी सत्य को आधार बनाना होगा। इस सत्य के साथ जुड़ना होगा। इस सत्य के साथ जुड़ जायेंगे तो मानवता स्थापित हो जायेगी। मानवता अगर स्थापित हो जायेगी तो निश्चय ही हमें चारों तरफ प्यार ही प्यार देखने को मिलेगा। शान्ति ही मिलेगी। वातावरण शुद्ध होता चला जायेगा और सब सुख की साँस ले पायेंगे। आज मानवता को ही बुलन्द करना है। सारी मानव जाति का भला ही हमने सोचना है। इस मालिक ने यह सारी धरती सभी इन्सानों के लिये बनाई। ये सूरज, चाँद, तारे सबके लिये बनाये। कहीं किसी के लिये अलग नहीं बनाया। ये सभी के लिये हैं। ऐसी दृष्टि को अपनाकर हम सभी मानव भाईचारा स्थापित करते जायें। एक दूसरे को प्यार, एक दूसरे को करुणा देते जायें। संकीर्णता से किसी का भी भला नहीं हो सकता। साधसंगत। इन संकीर्णताओं से उभरने की और विशालता में स्थित होने की ज़रूरत है। जैसे महात्मा कहते हैं कि थोड़ा सा जहाँ जल होता है वहाँ मछली बड़ी आसानी से काबू आ सकती है इसलिये कहते हैं कि संकीर्ण बने रहोगे तो इस मानवता से दूर निकल जाओगे। इन्सान से हैवान बन जाओगे। वरदान बनना तभी सम्भव है जब हम विशालता में विचरण करें। जैसे दास गमले की मिसाल देता है कि एक गमले में जब तक दीवारें हैं, उतनी देर तो पेड़ बड़ा नहीं हो सकता। वहाँ वह छोटा ही रहेगा। अगर पौधों को बड़ा करना है तो दीवारों से बाहर आकर धरती पर पाँव जमाने होंगे। विशाल पर पैर जमायेगा तो जड़ें विशाल होती जायेंगी और पेड़ बढ़ता जायेगा। इसी तरह अगर हम जाति–पाति की, मज़हबों की, माया की, प्रान्तवाद की दीवारों के बीच रहे तो मानवता का पौधा पनप नहीं सकेगा। हम मानव से देवता न बन पायेंगे। इन दीवारों से जब तक नहीं निकलेंगे तब तक हम अपने स्वरूप में स्थित नहीं हो पायेंगे। दातार करे कि ये जातियों और भाषाओं की दीवारें खड़ी न रहें।

धरती के सभी बाशिन्दे पाँच तत्वों के बने हुये हैं। इसलिये एक ही परमात्मा की सन्तान मानकर विचरण करते जायें।

ना को बैरी नाहीं बेगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।।

इस भावना से युक्त होकर ये सबका भला मांगते और करते रहें। आप विशाल हृदय वाले हैं। आप सहनशील हैं जो सब कुछ सहकर भी भलाई मांगना और भला करना नहीं छोड़ते। सहनशीलता केवल महात्माओं, सन्तजनों के पास ही हुआ करती है। कहते हैं –

खोद खाद धरती सहे काट कूट बनराय।
कटु वचन साधु सहें किसी और पे सहे न जाय।

कहते हैं कि खोद–खाद धरती सह लेती है। वनस्पति को भी काटा जाता है। लेकिन फिर भी वह हमारे सामने है। इसी तरह कटु वचन भी सन्त के सिवा किसी और से सहे न जायेंगे। सन्त सबका भला ही मांगते हें, वे चन्दन के पेड़ की तरह हैं। चन्दन के पेड़ के साथ अगर ज़हरीले साँप भी लटक जायें, उस पेड़ पर कुल्हाड़ी से प्रहार भी किया जाये लेकिन चन्दन महक देना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार सन्तजनों ने भी युगों–युगों से ऐसी, सहनशीलता का प्रमाण दिया है। आज भी ज़िक्र हो रहा था। ऐसे सहनशील सन्तों ने महान कुर्बानियां दीं। हालाँकि सामने नज़र आ भी रहा था कि कौन बुराई कर रहा है लेकिन फिर भी वे प्रहार सहते चले गये। उन्होंने भलाई की कामना नहीं छोड़ी। वे यही मांगते हैं कि प्रभु सबको सुमति प्रदान करें। चाहे किसी प्रकार से ये शरीर जाये लेकिन हमारा जो जीवन है, आखिरी श्वासों तक वह इसी मार्ग पर चलते हुये बीते। युगों–युगों से गुरु, पीर, पैगम्बरों ने यही राह बताई है।

सहनशीलता

साध संगत! आज लगभग एक वर्ष बाद (48वें वार्षिक सन्त–समागम के अवसर पर) इस विशाल रूप में आप महापुरुषों, सन्तों के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। देश और विश्व के अनेकों हिस्सों से आकर आप उत्साहपूर्वक, लगन और तन्मयता से युक्त होकर इस समागम की शोभा बने हैं ताकि महापुरुषों के वचनों का आनन्द प्राप्त कर सकें। इस एक वर्ष के दौरान अनेक प्रान्तों, अनेक गाँवों और शहरों में और चन्द दूसरे मुल्कों में भी जाने का अवसर मिला और वहाँ जाकर देखा कि किस कद्र आप इस निराकार परमात्मा, ईश्वर को आधार मानकर चल रहे हैं। साथ ही प्यार, करुणा और स्नेह की भावना से युक्त होकर दूसरों को भी सुकून और चैन प्रदान कर रहे हैं। आपके हृदय में यही भाव है कि सच्चाई की यह आवाज़ हर स्थान पर पहुँचे। आज आप सभी सज्जन, महापुरुष यहाँ आये हैं और मिलकर ऐसा ही प्रयास कर रहे हैं।

आज संसार की जो हालत है वह इन्सानों के लिये वरदान नहीं मानी जा सकती। क्योंकि आज इन्सान इन्सानियत खो चुका है। जिस्म भले ही इन्सानों वाला है लेकिन वह इन्सानी चाल को भूल चुका है। आज सन्त इसे यही संदेश दे रहे हैं कि हे इन्सान! अगर तुझे इन्सानों वाला जामा (शरीर) मिला है तो इन्सान के असल स्वरूप को सामने ला। इन्सान का असल रूप, जो दया वाला, करूणा वाला, स्नेह वाला और सहनशीलता वाला है, इस रूप को धारण करके हम जीवन जियें। अगर इन्सानों वाले गुण न हुये तो इन्सानी जन्म प्राप्त करके भी हम कुछ हासिल नहीं कर सकते। इसमें कोई शक नहीं कि इन्सान, तूने बहुत तरक्कियाँ की हैं, बहुत अविष्कार किये हैं, वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति की है, तू चाँद तक पहुँचा है। और भी अनेक प्लैनेट्स (उपग्रहों) के नज़दीक पहुँचा है और अभी भी ऐसे प्रयास कर रहा है कि जो कुछ अनजान है, उसे भी जान ले। इसी प्रकार मैडिकल फील्ड में भी तूने

तरक्की की है लेकिन जहाँ–जहाँ भी तू मानव बनकर नहीं जिया है, वहाँ–वहाँ विकास होते हुये भी पिछड़ापन है इसलिये इस हर एक तरक्की के लिये तुझे इन्सान बनना है। जब–जब तूने इन्सानियत की भावना को दूर रखा है, तब–तब तूने इन्सानियत का नुकसान किया है। दातार की दी हुई शक्तियों का तू दुरुपयोग करता रहा है। अगर तेरे पास धन आ गया, तूने उसका दुरुपयोग किया, अगर तन में ताकत आ गई तो उसका तूने दुरुपयोग किया, अगर तेरे दिमाग बहुत तेज़ चलता है तो उसका तूने दुरुपयोग किया। भाव, तूने किसी शक्ति का सदुपयोग नहीं किया। इस प्रकार तूने अपना ही नुकसान किया है और औरों का भी नुकसान किया है। सन्तजन, महापुरुष तुझे समय–समय पर जो सन्देश देते आये हैं, तूने उसकी अनदेखी की है, उनको अनसुना किया है जिस कारण तेरी यही दशा हुई है कि न तू स्वयं चैन ले पा रहा है और न दूसरों को चैन लेने दे रहा है। इसलिये अभी भी सम्भल जा, ऐसी भावना से युक्त हो जा, जिसके द्वारा तू स्वयं भी सुख और आनन्द देने वाला बन जाये।

आज संसार की हालत के बारे में तो ऐसे कहा जा सकता है कि –

एक आराम की साँस लेना भी दुश्वार हो गया है,
हर एक शख्स इस दौर का, दिल आज़ार बहुत है।

इस हालात में इन्सान दूसरे को सुख किस प्रकार दे सकता है जबकि खुद वह घृणा से भरा हुआ है। महात्मा समझाते हैं कि स्वयं को और दूसरों को दातार की दी हुई दातों का सदुपयोग करके ही सुख दिया जा सकता है। न्यूक्लीयर (नाभकीय) बम और घातक हथियार बनाकर नहीं दिया जा सकता। तशहुद (हिंसा) करके, दंगे–फसाद करके नहीं दिया जा सकता। ऐसे कर्म करके इन्सान तू बेचैनी ही फैला रहा है क्योंकि तेरी बुद्धि, तेरी भावना मलीन हो चुकी है। तू सत्य का मार्ग छोड़कर असत्य के मार्ग को अपना चुका है। सन्तों–महापुरुषों की शिक्षा को एक तरफ रख चुका है तथा साकतों की शिक्षा का अनुसरण कर रहा है। इस प्रकार संसार को कोई सुन्दर देन नहीं दे रहा है।

सन्तजन–महापुरुष हमेशा संसार को एक सुन्दर देन देते आये हैं। वे इन्सानों के लिये वरदान बनते आये हैं। हर इन्सान का मार्गदर्शन करते आये हैं और सोई हुई मानवता को जगाने का प्रयास कर रहे हैं कि इन्सान गफलत की नींद से जाग जाये। सहनशीलता, करुणा की भावना से युक्त हो जाये ताकि स्वयं भी शोभा का पात्र बने तथा दूसरों को भी सुख देने का साधन बने। इसीलिये आज इन्सान का ध्यान उन गुरु–पीर–पैगम्बरों की वाणी की ओर दिला रहे हैं जिन्होंने सब का भला किया जिन्होंने मानवता के लिये तन–मन–धन न्यौछावर कर दिया। जिन्होंने धर्म का सही रूप प्रकट किया तथा छीना–झपटी की बजाय देना सिखाया। उन समयों में भी अनेकों इन्सान सच्चे धर्म को भूल चुके थे, जिस कारण महात्माओं को धर्म की सही परिभाषा समझानी पड़ी। उन्होंने इन्सानियत का मार्ग भूले हुये इन्सानों को दिखाया। इन्सान को इन्सान

से प्यार करना सिखाया। लेकिन महापुरुषों को ऐसी उत्तम देन देने के बावजूद भी हमें ऐसी मिसालें मिलती हैं कि लोग अभिमान में, खुदगर्जियों में लिप्त रहे हैं और इन खुदगर्ज़ियों के कारण उन्होंने महापुरुषों से कैसा व्यवहार किया, मानवता को क्या देन दी, वह हमारे सामने है –

होने लगी है दैरो हरम में साज़शें कैसी।
धुआं सा उठने लगा है शहर के मकानों से।।

आज स्वयं को धर्मी मानने वाले लोगों ने इन्सानों को क्या देन दी है? क्या अमृत भरा है लोगों के मन में? यही भरा है कि यह फलाँ धर्म ग्रन्थ को मानता है, फलाँ महापुरुष को मानता है, फलाँ महापुरुष को मानता है, इसलिये यह कोई बेहतर इन्सान नहीं है, मैं जिसको मानता हूँ वही श्रेष्ठ है इसलिये मेरी मान्यतायें श्रेष्ठ हैं। जैसे –

शिया कहन्दे असी उचेरे सुन्नी साथों थल्ले।
सुन्नी कहंदे असी उचेरे, शिया खस्से झल्ले।
अमलां बाझों दोहां घिरां दे सिर ते पैंदे खल्ले।

मन में यही भरा गया कि वह नीचा है वह छोटा है। वास्तव में यह महापुरुषों की शिक्षा नहीं थी। फिर ये साज़िशें किसने कीं कि आज इन्सान – इन्सान का वैरी हो गया –

राम दास किते फतेह मुहम्मद ऐहो कदीमी शोर।

इन्सान इसी में उलझ गया कि मैं रामदास हूँ, वह फतेह मुहम्मद है। मेरा राम है, इसका अल्ला है। यही मैल इन्सानों के मन में भर गई है, जिससे घृणा और नफरत की ज्वालायें भड़क गईं। पहले युगों में भी ऐसा होता आया है। इतिहास भरे पड़े हैं ऐसी घटनाओं से कि कहीं चक्की पिसवाई गई, जंगलों में जाने को मजबूर किया गया, शीश भी लिये गये, सूली पर भी लटकाये गये। इन्सान को इस कद्र लड़वाया गया कि सारी मानवता का नुकसान हो गया। आज जब संसार की तरफ नज़र घुमाकर देखते हैं तो ऐसा ही कुछ नज़र आता है और जब अपने घर अर्थात् अपने देश की तरफ देखते हैं तो हमें यहाँ भी यही देखने को मिलता है। जितना अधिक हम दावा करते हैं कि धरती का और कोई ऐसा हिस्सा नहीं है जहाँ इतने गुरु, पीर, पैगम्बर पैदा हुये हों जितने हिन्दुस्तान की धरती पर, जिन्होंने हमें ऐसी अमोलक वाणी दी है। इसके बावजूद जो हालात हैं वो हमारे सामने ही हैं। हम वहीं कंगाल के कंगाल हैं। हिन्दुस्तान `चपतपजनंस बतमंजवत (आध्यात्म का सृष्टा) माना जाता है। लेकिन आज हिन्दुस्तान की जो हालत है वह हम देख भी रहे हैं और भुगत भी रहे हैं। सन्तजनों, भक्तजनों ने हमें इतनी महान दौलत दी है, इस दौलत को हम अपने हाथों से ही जला

रहे हैं। इसकी कद्र हम खो चुके हैं, जिस कारण बार–बार देश का नुकसान करते जा रहे हैं।

आप सन्तजन, महापुरुष, भक्तजन जहाँ विश्व के प्रति, मानवता के प्रति आस्थावान होते हैं वहीं अपने देश के लिये भी हित की बात करते हैं और यही चाहते हैं कि हम भी उन गुरु–पीर–पैगम्बरों की कद्र करें जिन्होंने सबका भला किया; जिनके लिये कोई जाति–पाँति, भाषा की दीवार नहीं थी, जिन्हें कोई पहनावा अखरता नहीं था। वे हर किसी को अपना मानकर चलते रहे, हर किसी से प्यार करते रहे और सबका भला किया। आज उन्हीं भावनाओं को, उन्हीं असूलों को आप विस्तार दे रहे हैं जिसके फलस्वरूप पिछले वर्ष के मुकाबले इतने अधिक महापुरुष इस वर्ष यहाँ पधारे हैं। आपका अन्य कोई मन्तव्य नहीं है। आप केवल यही चाहते हैं कि अधिक से अधिक लोग उन सन्तों–महापुरुषों की शिक्षा को अपनायें तथा ज्ञान के उजाले को प्राप्त करे अन्धकार को मिटायें और रोशनी में स्थिर हो जायें। चारों ओर महक ही महक बाँटते जायें। आप ऐसे ही यत्न–प्रयत्न करते आ रहे हैं, इसी कारण यह मानव परिवार इस विशाल रूप को धारण कर सका है। दातार ऐसी कृपा करे, ऐसी दया करे कि यही देन संसार को दी जाती रहे। महापुरुष, सन्तजन संसार में जागृति लाते जायें। खुद ऐसी मिसाल बनकर इन्सानियत का, प्यार का मुजस्स्मा (मिश्रण) बनकर चारों तरफ शीतलता और ठंडक फैलाते जायें।

साध संगत! आप ऐसे वचन श्रवण कर रहे हैं जो प्रेरणादायक हैं, आनन्द प्रदान करने वाले हैं। इन्हें अपनाकर अगर जीवन जिया जाये तो जीवन निश्चय ही हमेशा खुशनुमा रहे और जीवन में सदा बहार बनी रहे। हर युग में ही, भले ही वह सतयुग रहे, त्रेता रहा, द्वापर रहा अथवा कलयुग रहा, महापुरुषों ने इन्सान को ऐसे भाव प्रदान किये हैं। उन समयों में भी सच्चाई पर चलने वाले सदैव इन्हीं भावों से युक्त रहे हैं। भक्त प्रह्लाद का जीवन हम देखें, तो अपने ही घर में अपना ही पिता घृणा और वैर करने वाला था। फिर भी भक्त ने सत्य की प्रतिष्ठा की। त्रेता युग में भगवान राम जी ने मर्यादायें कीं और सत्य की प्रतिष्ठा की। प्यार, करुणा और सहनशीलता का प्रमाण दिया। इसी प्रकार द्वापर युग में भगवान कृष्ण जी ने इसी सत्य को स्थापित किया और जीने का सही ढंग सिखाया। इसी प्रकार कलयुग में हज़रत मुहम्मद साहिब ने, श्री गुरु नानकदेव जी से लेकर श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी तक तथा और भी जो अनेकों सन्त हुये, सभी ने इस सच्चाई की प्रतिष्ठा की। आज आप भी इसी प्रयास में हैं कि इस सत्य को ही जीवन में प्राथमिकता दी जाये। हज़रत ईसा मसीह भी अपने जीवन काल में इस सत्य को उजागर करते रहे। उन्होंने भी प्यार को अपनाकर जीवन जीने की प्रेरणा दी।

साध संगत! सन्तों–महापुरुषों की इन्हीं शिक्षाओं को अपनाकर जीने वाले को ही कहा गया है 'अशरफुल मखलूकात'। भाव, सभी योनियों में श्रेष्ठ। अगर हम सत्य को आधार बना लेते हैं, इस सत्य का निवास घट–घट में देखते हैं तो निश्चय ही हमारा

जो व्यावहारिक पहलू होगा वह ऐसा होगा, जिसके कारण इन्सान को मिला इन्सान का रुतबा जायज करार दे दिया जायेगा। और अगर इसके विपरीत दृष्टि, विपरीत चाल, विपरीत व्यवहार है तो महापुरुषों को उसे देखकर ऐसा कहना पड़ा कि –

करतूत पसु की मानस जाति।।

भाव, भले ही मानव जाति प्राप्त हुई है, मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है परन्तु इसका कर्म पशुओं जैसा ही है। आज हम संसार भर में घूमकर देखते हैं तो यही पाते हैं कि सत्य को आधार नहीं माना गया बल्कि 'मिथ्या' को ही विशेषतायें दी गई हैं। सुबह से लेकर शाम तक, बचपन से बुढ़ापे तक मिथ्या ही हमारे लिये सब कुछ बन गया है और जो सत्य है उसकी हमने कद्र ही नहीं जानी। हीरे को छोड़कर हम सदैव काँच को ही विशेषता देते रहे। ज़रा सोचें कि एक तरफ हीरा और दूसरी तरफ काँच; तो हम किसे विशेषता देंगे? एक तरफ अंधकार हो और दूसरी तरफ सूर्य, तो हम किसको विशेषता देंगे? जो सही महत्व जान लेते हैं, वे सदैव हीरे की ओर ही कदम बढ़ाते हैं। जितने भी सन्तों–भक्तों का हम ज़िक्र करते हैं, उन्होंने सत्य रूपी हीरे को अपनाया; इस राम रत्न धन को ही अपनाया। मीरा के पास दुनियावी दौलत की कमी नहीं थी लेकिन जो हीरा उसे प्राप्त हुआ, भक्त रविदास जी की कृपा से, उसे प्राप्त करके ही मीरा ने स्वयं को वास्तव में धनी माना। तब ही उसने कहा कि –

पायो री मैने राम रतन धन पायो,
वस्तु अमोलक दी मेरे सत्गुर कर किरपा अपनायो।

कबीर जी को यह धन प्राप्त हुआ तो उन्होंने भी यही कहा कि इस नाम की दौलत को प्राप्त करके ही धनवान कहलाया जा सकता है। उन्होंने कहा –

कबीर सब जग निर्धना धनवन्ता नहीं कोय।
धनवन्ता सो जानिये जाके राम रतन धन होय।

कहने का भाव यही है कि भक्तों ने सदैव राम रतन धन ही प्राप्त करने की प्रेरणा दी है लेकिन आज इन्सान इस धन को विशेषता देने को तैयार नहीं है। यदि इन्सान इसे विशेषता नहीं देगा तो उसकी मुफलिसी, उसकी कंगाली कैसे दूर होगी? यह कंगाली धन के कारण नहीं बल्कि मन में तंगदिली के कारण है। दास पहले भी यह बात आपके समक्ष रख चुका है कि किसी ने कहा है – प्दकपं पे ं तपबी बवनदजतलए इनज पदींइपजमक इल जीम चववतेण भाव, भारत एक अमीर मुल्क है लेकिन इसमें रहने वाले गरीब हैं। कहने वाले ने तो यह इस भाव में कहा कि हिन्दोस्तान में बहुत से खनिज पदार्थ हैं बहुत से तमेवनतबमे हैं, जंसमदज हैं लेकिन इस सबके होते हुये भी यहाँ कितनी गुरबत है लेकिन अगर इसे आध्यात्मिक पहलू से देखें तो यह बात सिद्ध होती है। हमारे पास सन्तों–महात्माओं, गुरु–पीर–पैगम्बरों की

बातें, उनकी शिक्षा, उनके असूलों का सरमाया (विरासत) है लेकिन इतनी बड़ी दौलत होने के बावजूद असहनशीलता, संकीर्णता तथा जाति–पाति के बन्धनों में फँसे रहने से ही हमारी कंगाली बनी है, जिस कारण धर्म, जिसका काम जोड़ने का है, वह भी तोड़ने का कारण बनता जा रहा है। इस अवस्था को देखकर ही किसी शायर ने कहा है कि –

सदियों की तहजीब को मिटा डाला है।
पड़ोसी ने पड़ोसी का घर जला डाला है।।

महापुरुषों ने सदियों से हमें यही शिक्षा दी है कि – स्वअम जील छमपहीइवनत अर्थात् अपने पड़ोसी से प्रेम करो। लेकिन आज पड़ोसी जो अर्से से इकट्ठे रहते हैं, दुख–सुख में शामिल होने की बजाय एक दूसरे को जला डालते हैं। यह कंगाली नहीं है तो क्या है? क्या कोई धर्म सर्निं बना लेना या विशेष लिबास पहन लेना ही उन महापुरुषों की शिक्षा थी? नहीं, उन महापुरुङ्डों ने तो हमें प्यार करना सिखाया, जाति–पाति के बन्धनों से ऊपर उठकर जीना सिखाया। भगवान राम भी शबरी को गले लगाते हैं, उसे दुत्कारते नहीं। हालांकि उस समय के कर्मकांडी लोग, कर्मकांड के आधार पर ही मान रहे थे कि वे विशेष भक्त हैं, परमार्थ पर चलने वाले वही हैं। जब भगवान राम शबरी की कुटिया की तरफ बढ़ रहे थे तो उनको कर्मकांडी लोगों ने यह कहकर उन्हें रोकने का प्रयास किया कि वह तो नीच जाति की है, वह तो चांडाल है, आप उधर कहाँ जा रहे हैं? परन्तु भगवान राम ने उनकी एक न सुनी बल्कि भक्त शबरी को पूरा मान–सम्मान दिया। महापुरुङ्डों ने तो यही सिखाया कि –

सभै घट राम बोले, रामा बोले,
राम बिन को बोले रे।

घट घट में इस अलख को देखना; फिर भेद कहाँ रहा। आपने यहाँ महाराष्ट्र के महापुरुषों को भी सुना। तेलुगू भाषी महापुरुषों को भी सुना, जो वहाँ की ही भाषा को इस्तेमाल करते हैं, रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में, इन भाषाओं में भी आप यह सुन रहे थे कि जाति–पाँति के बन्धनों से ऊपर उठना तथा घट–घट में इस अलख को देखना है। महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम जी, सन्त नामदेव जी की बाणी मकृ भी आपको वही भाव मिलकृगे बल्कि शब्द भी हू–ब–हू वही मिलकृगे जो कबीर जी की बाणी मकृ है। इसी प्रकार बाइबिल मकृ भी हमकृ वही मिल जायेगा, जो गुरुबाणी मकृ मिलता है। वही हमकृ पाक कुरान मकृ भी मिल जायेगा और वही अमोलक वचन हमकृ रामचरितमानस मकृ भी मिल जायेंगे। यानि कि किसी मकृ कोई भेद नहीं है। जैसे सूरज एक है, इसे गुरुबाणी वाला कुछ और नहीं कह सकता, रामायण में इसे और कुछ नहीं कहा जायेगा क्योंकि सूरज तो सूरज ही है। इसी प्रकार सत्य तो सत्य ही है इसे किसी प्रकार भी अलग–अलग नहीं किया जा सकता। इसको कभी बाँटा नहीं जा सकता। सभी महापुरुषों का कथन इसी सत्य की ओर ही इशारा करता है, वही उसूल। कहीं कोई अन्तर नहीं है। अगर देखने में कुछ अन्तर दिखाई देता है तो वह किसी स्थान, किसी

संस्कृति के प्रभाव के कारण होगा। कई महात्मा रेगिस्तानी इलाके में हुये होंगे, कई जरखेज़ (सम्पन्न) धरती पर हुये होंगे। कई किसी संस्कृति में रहे होंगे, किसी विशेष परिवार में उनका जन्म हुआ होगा। कई उस समय में हुये होंगे जब राजा–महाराजाओं के जुल्म हो रहे होंगे। इस आधार पर कहीं कुछ अन्तर दिखाई दे रहा होगा। लेकिन जब हम सत्य की ओर देखते हैं, उनकी शिक्षाओं की ओर देखते हैं, उनकी मान्यताओं की तरफ देखते हैं तो उनमें कोई भेद नज़र नहीं आता। उनकी शिक्षा तो यह है कि –

सन्तन के मन रहत है सबके हित की बात।
घट–घट देखें अलख को पूछें जात न पात।

जिसे हर घट में अलख देखने वाली दृष्टि मिल जाये तो फिर उसके लिये कौन पराया, कौन बेगाना? उनके तो फिर ये बयान हैं कि –

ना को बैरी नाही बेगाना
सगल संगि हम कउ बनि आई।।

आज अगर हम इन भावों को केवल दोहरा रहे हैं, उस नज़र को प्राप्त किये बगैर, उन भावनाओं से युक्त हुये बगैर, तो उसका कोई लाभ नहीं। इसी कारण जुबान से तो कहा जा रहा है कि सरबत का भला लेकिन कर्म से कहाँ किया जा रहा है सरबत का भला। हमारी दृष्टि तो ऐसी बनी हुई है कि यह मेरे जैसा पहरावा नहीं पहनता तो यह दुत्कारने लायक है। यह मेरे जैसी भाषा बोलेगा तो यहाँ रह पायेगा वरना इसे कहीं दूर चले जाना चाहिये। हम इसे यहाँ पर सांस भी नहीं लेने देंगे। जब तक हम सन्तों, महापुरुषों की दृष्टि को अपनाते नहीं, तब तक यह वैर–द्वेष, ये दूरियाँ समाप्त होने वाली नहीं हैं। तब तक निकटता कायम होने वाली नहीं है। आज इन्सान और इन्सान के बीच दूरी है जिस कारण इन्सान का नाता इन्सान से नहीं जुड़ पा रहा और यह नाता न जुड़ पाने का मुख्य कारण है – इन्सान का प्रभु से नाता न जुड़ना। जब तक इस मालिक से इन्सान का नाता नहीं जुड़ता, ये दरारें बनी रहती हैं। युगों–युगों से ऐसा होता आया है और उसके असर, उसकी पीड़ा को भी सहन करना पड़ा है। इस पीड़ा से बचने के लिये महापुरुषों का सदैव यह प्रयास रहा है कि इन्सान इस सत्य का बोध कर ले; अपनी आत्मा की अज्ञानता दूर कर ले और भाषा की, संस्कृतियों की सीमाओं से ऊपर उठकर सब में केवल आत्मा और परमात्मा का ही एहसास करे।

साध संगत! अगर हम देखें तो हमारे हिन्दुस्तान की ही कितनी भाषायें हैं। हर सोलह कोस के बाद भाषा का पुट बदल जाता है। इसी प्रकार सारे संसार की अनेक भाषायें हैं। हर किसी का अलग रहन–सहन है। समुद्र किनारे रहने वाला किसी और प्रकार से रह रहा है। रेगिस्तान में रहने वाला किसी और तरह जी रहा है। दोनों का

पहरावा, खान–पान नहीं मिलता। महापुरुषों, सन्तों ने इन विभिन्नताओं के होते हुये भी यही कहा है कि सत्य तो सत्य है, सभी इन्सानों में एक परमात्मा का अंश आत्मा निवास कर रही है। अगर भाषाओं, मान्यताओं के अन्तर के कारण परमात्मा भी अलग होते तो पूरे विश्व की विभिन्नताओं के कारण इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती। लेकिन ऐसा नहीं है। परमात्मा तो एक ही है लेकिन हम बाहरी रूपों में उलझ कर रह गये हो। बनावटों मकृ ही उलझ कर रह गये हो। हमने यह नहीं जाना कि –

माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारै।

मानव शरीर मकृ लगे हुये पाँच तत्व एक जैसे हो। वही पाँच तत्व अमेरिकन के शरीर में भी लगे हो। वही डपककसम मेंज (मध्यपूर्व) मकृ रहने वाले इन्सान को भी लगे हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, पंजाबी, सिंधी, उड़िया या बंगाली कहे जाने वाले सभी इन्सानों को भी एक जैसे तत्व ही लगे हुये हो। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, काले–गोरे सभी इन्सानों मकृ यही तत्त्व ही लगे हुये हो। जब शरीर की कॉम्पोज़िशन एक जैसी है और चेतन सत्ता परमात्मा का अंश आत्मा का नूर भी एक जैसा ही है तो भेद कहाँ है? अगर हमारे मन में कोई भेद है तो उन भेदों को मिटाना होगा और यह केवल किन्हीं बयानों, नारों से नहीं बल्कि कर्म से, सोच के द्वारा मिटाना होगा। जिन्होंने वास्तव मकृ उन भेदों को मिटाया, वे ही इन्सान बनकर जिये हो। जो सही इन्सान बन जाता है, जो इन्सानियत को अपना लेता है, वह सन्त हो जाता है। वह महात्मा हो जाता है। प्रभु–परमात्मा को जाने बगैर किये जाने वाले कर्म–कांडों के लिये महात्मा कहते हो –

बाहरों द्योते लतां गोडे अन्दरों ही पलीती;
कन्ना नूं हर्ंलाये पहला परे नमाज तू लीती।

अथवा

बाहरि गिआन द्दिआन इश्नान।
अंतरि बिआमै लोभु सुआनु।।

बाहर से तो कर्म–कांड, स्नान, जप–तप हो रहे हो, लेकिन मन मकृ सच्चाई नहीं है। मन मकृ उजाला नहीं है तो इन कर्मों का कोई लाभ नहीं है। महापुरुष फरमाते हो कि –

मन अन्दर जोत जगा लै तू।
यारी नाल सजन दे ला लै तू।

इन्सान की हालत के बारे मकृ कहते हो कि –

वो शहर तो आबाद था लोगों से हमेशा,
पर लोग ही ऐसे थे कि आबाद नहीं थे।

आज द्दरती पर इन्सानी जिस्म रखने वालों की कमी नहीं है। हिन्दुस्तान की, चीन की आबादी इतनी बढ़ रही है कि एक ।संतउपदह ेपजनंजपवद बनती जा रही है। वास्तव में इन्सान बनकर जीने वाले दिखाई नहीं दे रहे हो। ऐसी अवस्था मकृ वह शेयर स्वयं जुबान पर आ जाता है कि –

क्या करेगा प्यार वह भगवान से,
क्या करेगा प्यार वह ईमान से।
जन्म लेकर गोद मकृ इन्सान की।
कर न पाया प्यार जो इन्सान से।।

ईमान की, भगवान की, इबादत की बातकृ तब तक मुकम्मल नहीं होतीं जब तक हम इन्सान बनकर नहीं जीते। जब तक इन्सान इन्सान से प्यार नहीं करता, तब तक सभी उसूल, सभी मान्यतायें ध्वस्त हो जाती हो। एक शायर के अनुसार –

पुरनूर ज़िन्दगी की सहर **Â**ो रहे हो लोग।
सूरज चढ़ा हुआ है मगर सो रहे हो लोग।

भाव, इन्सानी जन्म पाकर भी इन्सान इन्सानी कद्रों–कीमतों को नहीं अपना रहे हैं। यह सदैव से होता आया है। ऐसा नहीं है कि यह केवल कलयुग के हिस्से में आया हो। अगर चढ़े हुये सूरज की कद्र की जाती तो हिरण्यकश्यप जैसे लोगों का नाम इतिहास में न आता। अगर चढ़े हुये सूरज की कद्र की जाती तो आज हमें रावण का, दुर्योधन का नाम कहीं न मिलता। सूली पर चढ़ने वालों का नाम कहीं न मिलता। लेकिन ऐसे नाम हमें हर युग में मिलते रहे हैं; किसी युग में भी महापुरुषों की आवाज़ की कद्र नहीं की गई है। परन्तु बाद में उन्हीं के नाम पर हम आपस में लड़ने को तैयार हो जाते हैं। ऐसी हालात देखकर वह मिसाल याद आ जाती है कि – ूीमद कवमे ं चंकमेजतपंद हमजे चतममितमदबम किसी ने पूछा एक पैदल चलने वाले को प्राथमिकता कब दी जाती है? तो जवाब मिला कि ूीमद ीम पे पद ंउइनसंदबम अर्थात् जब वह ज़ख्मी हो जाता है, एम्बूलैंस में होता है फिर उसके लिये सारा ट्रैफिक रुक जाता है कि पहले इस एम्बूलैंस को जाने दो। इसी प्रकार सन्तजनों–महापुरुषों ने जब सच्चाई की आवाज़ दी तब उनको नफरत और घृणा से देखा गया। उनके साथ दुर्व्यवहार किये गये और बाद में – 'समां गया फिर हत्थ न आउंदा' के अनुसार पश्चाताप करना पड़ता है।

जिस विशाल परमसत्ता के साथ नाता जोड़कर ही यह विशालता जीवन में आने वाली है, इन्सान इसी से दूर है, इसी से अनजान है। यह मालिक जो कण–कण में व्याप्त है, जो सर्वत्र समाया हुआ है। यह बहुत विशाल है, इसका बहुत विस्तार है। इन्सान युगों तक जोर लगा लेता है, परन्तु इसके विस्तार को नहीं नाप पाता है।

अभी भी बहुत यत्न किये जा रहे हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि बहुत से ऐसे उपग्रह छोड़ रखे हैं जिनसे यह पता लगाया जा रहा है कि और कितने तारे हैं, कितने ग्रह हैं, कितने सौर मंडल हैं, जिनके बारे में अभी ज्ञान नहीं है। बहुत खोज की जा रही है लेकिन समाधान दिखाई नहीं दे रहा है। इन्सान अगर सदैव लगा रहे तो भी कभी वहाँ तक पहुँचने वाला नहीं है, जितनी इस मालिक की विशेषता है, जितना इसका विस्तार है। तो ऐसे प्रभु–परमात्मा के साथ अगर इन्सान का नाता जुड़ जाये। तो यह भी विशाल हो जाये। जैसे समुद्र के साथ नदी का नाता जुड़ जाता है तो वह विशालता को धारण कर लेती है। जितनी देर दायरे हैं, हदें हैं, तब तक विशालता नहीं आ सकती। सागर के साथ जब नाता जुड़ जाता है तो फिर हम कहते हैं कि यह सागर है। उसे नदी या नाला नहीं कहते क्योंकि उसने अपना अस्तित्व मिटा दिया, वह जुड़ गया एक विशाल समुद्र के साथ।

इसी तरह से प्रभु परमपिता परमात्मा, इस परमसत्ता, इस विशाल सत्ता के साथ नाता जुड़ जाता है तो फिर यही अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसलिये भक्तों ने कहा कि –

तोहि मोहि, मोहि तोहि अन्तर कैसा

यह भेद मिट जाता है। ये सारी दीवारें टूट जाती हैं। सारी भ्राँन्तियाँ, सारे भ्रम मिट जाते हैं। फिर जन्म–मरण के बन्धन भी मिट जाते हैं। कहते भी हैं कि –

जनम मरन के मिटे अंदेसे।
साधू के पूरन उपदेसे।।

जो यह पूर्ण सत्य का ज्ञान दिया गया, इसके द्वारा सन्त आवागमन, जन्म–मरण के बन्धन से उभर गये और जीवन मुक्ति को प्राप्त किया। परमात्मा के साथ नाता जुड़ गया। फिर वे इसी का ही रूप हो गये। महात्मा कहते हैं कि –

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी

कहते हैं कि चारों तरफ, अन्दर बाहर, यह परमात्मा समाया हुआ है। ऐसे परमात्मा का ज्ञान ज्ञानीजनों ने कराया, जिसके द्वारा सारे अंदेशे, सारे भ्रम मिट गये और जन्म–मरण से उभर आये।

साधसंगत! फिर वे बन्धनों से भी उभर गये और एक हकीकत में स्थित हुये। एक दिन राजा जनक ने स्वप्न में देखा कि उनके कपड़े फटे हुये हैं। पांवों में कांटे चुभ रहे हैं, जूती भी पांव में नहीं है। इस प्रकार का अपना वेश वे देख रहे हैं और फिर जब निद्रा अवस्था से बाहर आये यानि नींद खुली तो स्वप्न के बारे में सोचने लगे। फिर सन्तों के सामने अपनी उलझन रखी कि जो मैं उस वक्त देख रहा था वह दृश्य सत्य था या जो मैं अब देख रहा हूँ यह सत्य है?

सन्तजनों, ज्ञानीजनों ने यही कहा कि राजन, न तो वह सत्य था, न यह सत्य है। यह मानो एक बड़े स्वप्न के आगे एक और स्वप्न देख रहे हैं। सच वो भी नहीं था और सच यह भी नहीं है। यह संसार एक छाया मानी गई है, यह क्षणभंगुर मानी गई है। जीवन की यात्रा को तय करते हुये इस मालिक–परमात्मा यानि सच के साथ नाता जुड़ जाने के कारण, इसका बोध हो जाने के कारण ही फिर समझ आ जाती है, यह एहसास हो जाता है कि वाकई बाकी सभी चीज़ें स्वप्न की मानिन्द (भाँति) हैं। जैसे अवतार बाणी में भी आप पढ़ते हैं कि –

पक्की गल समझ ले ये ही एह आन्दी ते जान्दी ए।

यह संसार का जो पसारा है, उसके बारे में कहा गया है –

एह नौ चीजां दृष्टमान ने जिसनूं कहन्दे माया ए।
दसवां ब्रह्म ऐहनां तों न्यारा एहनां विच समाया ए।।

यानि सारा संसार क्षणभंगुर है, आने–जाने वाला है लेकिन कायम–दायम रहने वाला एक निरंकार है। एक अकाल–पुरुष है।

साधसंगत, महापुरुषों, सन्तों, गुरु–पीर–पैगम्बरों ने यही याद दिलाया कि इन्सान तूने यह कार्य करना है, जिसके लिये यह मनुष्य जन्म मिला है। इससे तेरा यह लोक सुखी हो जायेगा और परलोक सुहेला जो जायेगा। तेरा संसार में आना सार्थक हो जायेगा। तू ऐसा लाभ ले लेगा जिसके कारण तू हर वक्त चमकते सितारों की भाँति चमकता रहेगा। ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिये महापुरुषों ने इन्सान को समझाया कि हे इन्सान, तू सत्य की लखता कर ले। तू सारी चीज़ें जानने की इच्छा रखता है और वे जानकारियाँ हासिल भी करता है लेकिन जिसे जानना आवश्यक है और जो जानने योग्य है इसी की तरफ कदम नहीं बढ़ते। हे इन्सान, तू तमाम दुनियावी जानकारियों को हासिल कर ले लेकिन अगर यह सच्ची जानकारी हासिल न की तो फिर इन्सान के भ्रम मिटते, ये बन्धन नहीं टूटते फिर उसी गेड़ (बन्धन) में यह आत्मा पड़ी रहती है।

साध संगत, यही एक अरदास है कि दातार कृपा करे, हर इन्सान को यह एहसास बख्शे कि हर इन्सान समय रहते अपने आपको सम्भाल ले और इस कार्य को कर ले वरना तो –

क्या भरोसा है, ज़िन्दगानी का
आदमी बुदबुदा है पानी का

कहते हैं कि क्या भरोसा है, इन सांसों का? कोई भरोसा नहीं, चाहे कोई बहुत प्रिय है हमें – या कोई अखरते हैं हमारी आँखों को। उनके जीवन की मियाद का हमें कुछ पता नहीं। हमें अपने आप का भी पता नहीं है कि इन सांसों की लड़ी को कब टूट जाना है। अगर यह मालूम ही नहीं है कि कितनी देर यह जीवन लीला चलनी है तो फिर इन्सान तू क्यों अनजान बना हुआ है? क्यों लापरवाह है? तू समय रहते इन सांसों का मोल डाल ले। समय को हाथों से न जाने दे। अपना मुख उजला कर ले। कहते हैं कि –

कबीर सूता किआ करहि बैठा रहु अरु जागु।
जाके संग से बीछुरा ताही के संग लागु।।

तू जिससे बिछुड़ा हुआ है उससे मिल जा, तू सोया न रह, तू जाग्रत अवस्था में रह। जहाँ आत्मा जागृत होती है वहीं मन को भी सही उजाला प्राप्त होता है। फिर इस मन के सारे भ्रम टूट जाते हैं। फिर कोई पराया नहीं, कोई नीचा नज़र नहीं आता। फिर कोई जाति–पाँति का सवाल नहीं रह जाता है। फिर ये सारे भेद मिट जाते हैं। यह सभी इस मालिक–निराकार का बोध हो जाने के कारण ही हो पाता है। इस जागृति के कारण यह दृष्टि प्राप्त हुई जिसके कारण इस संसार में विचरण करते हुये हम खुद भी सुख की सांस लेते हैं। जिनका नाता इस दातार से नहीं जुड़ा, उनकी संकीर्णताओं से हम भली–भाँति वाकिफ हैं। कदम–कदम पर ऐसा इन्सान लूटपाट, मार–काट कर रहा है। क्योंकि उसके दिल में संकीर्णता है, तंगदिली है। जैसे एक कमरे में चार–पाँच सदस्य ही रह सकते हैं अगर उसमें और लोग भरते चले जाये तो आखिर क्या होगा? खिड़कियाँ दरवाज़े भी बन्द हैं तो उनका तो दम ही घुटेगा।

इसी तरह इन्सान की संकीर्णता है। उसने अपने दिलो–दिमाग की खिड़कियाँ–दरवाज़े बन्द कर रखे हैं। मेरा धर्म, मेरा मज़हब, मेरी जाति, मेरी भाषा के अलावा और किसी को प्रधानता देने को वह तैयार नहीं है। वह दीवारें खड़ी करता जा रहा है। शायद हिटलर का भी कुछ ऐसा ही विचार रहा होगा। उसने भी ऐसे कुछ चैम्बर्स (कक्ष) बना रखे थे जिसमें वह लोगों को ठूँसता ही चला गया। इतने लोग उसमें ठूँस दिये कि उनका दम घुट गया और सबका अन्त हो गया, आज भी हम तंग दायरों में बंधे हुये हैं। तंगदिली वाले बन चुके हैं। इस प्रकार हमने अपने लिये घुटन स्थापित कर ली है।

महापुरुष कहते हैं कि इस घुटन से अगर बचना है तो इन दायरों से बाहर निकलना होगा। इन दीवारों को गिराना होगा। विशाल से जुड़कर विशाल हृदय वाला बनना होगा, जिसमें सभी समा जायें, जिसमें सारे इन्सानों का दर्द समा जाये, सभी फिर अपने ही नज़र आयें। तभी हम सुख की सांस ले सकते हैं, अगर ये दीवारें रहेंगीं तो चैन–सुकून आने वाला नहीं है।

साधसंगत! सन्तजनों ने तो हमेशा विशालता का प्रमाण दिया है। उनके लिये कोई भी पराया–बेगाना नहीं था। यहाँ तक कि जिन्होंने उनके साथ दुर्व्यवहार किये, जिन्होंने घृणा व वैर किये, जिन्होंने जुल्मो–सितम किये, उनके लिये भी उन्होंने कुछ बुरा नहीं माँगा। ऐसी कोई भी अरदास, प्रार्थना किसी धर्म–ग्रन्थ में नहीं मिलेगी। भगवान राम, भगवान कृष्ण से लेकर हज़रत ईसा मसीह, हज़रत मुहम्मद साहिब और श्री गुरुनानक देव जी महाराज से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज तक ही जुबान से कोई शब्द ऐसे नहीं मिलेंगे जिनमें उन्होंने किसी का बुरा मांगा हो। कभी उन्होंने ऐसी प्रार्थना नहीं की कि इसका बुरा हो जाये। ऐसा कोई भी भाव आप उनके जीवन से नहीं देख पायेंगे। बल्कि उन्होंने विशालता का प्रमाण दिया सदा दुख सहकर भी उन्होंने अपने को विनम्र बनाया। उन्होंने कभी अपने मन से वैर, द्वेष, ईर्ष्या या घृणा नहीं आने दी। वे अपने असली स्वरूप में स्थिर रहे हैं। ऐसी ही विशालता को अपनाते हुये आप अपने जीवन की यात्रा को तय कर रहे हैं। उनके प्रति आस्था, उन्हीं के प्रति श्रद्धा रखने वाले, उन्हीं के वचनों का दिन–रात रटन, पठन–पाठन करने वाले आज अगर संकीर्ण, तंगदिल ही बने रहे तो इससे क्या हासिल होगा? जैसे कहते हैं कि – समुद्र पर सकूं है इसलिये गहरा भी है। मचलती नदियों में कोई गहराई नहीं होती। तो समुद्र है वह इतना विशाल है, इतना गहरा है जैसे कबीर जी भी कहते हैं कि –

कबीर समुंद्र न छोडिए जउ अति खारो होइ।।

चाहे समुद्र का पानी खारा ही क्यों न हो, लेकिन इसे मत त्यागो। यह इतना विशाल, इतना गहरा है, इसमें इतने रत्न, हीरे–जवाहरात, कीमती पदार्थ छिपे हुये हैं कि कहते हैं समुद्र न छोड़िये। इसी प्रकार इस मालिक निराकार परमात्मा को भी न छोड़ें, इस विशालता को न छोड़ें। कभी भी संकीर्ण न बनें, कभी भी तंगदिन न बनें और इस प्रकार सारे संसार का भला मांगते जायें, करते जायें। ऐसा आप सन्तों, महापुरुषों ने ही किया है। बुरा करने वालों के लिये भी बुरा नहीं चाहा है। हर किसी के लिये भला ही भला मांगा है। आप सन्त ही ऐसी भावना से युक्त हैं।

दातार कृपा करे कि ये भावनायें बढ़ती जायें और इनको फैलाव मिलता जाये। इसीलिये आप यहाँ एकत्रित हुये हैं। इसलिये इतना बड़ा आयोजन किया गया है। आप सब इसी भावना से आये हैं कि सच्चाई को जानने वाले और बढ़ते जायें। सारे संसार को अपना जानकर, अपना मानकर इस यात्रा को तय करते चले जायें ताकि इस धरती का वातावरण शुद्ध होता जाये, उसमें महक आती जाये। इस प्रकार के भाव लिये हुये इस सन्त समागम के अवसर पर आप एकत्रित हुये हैं।

दास यही अरदास–प्रार्थना करता है कि दातार कृपा करे कि यह भावना सबको प्रदान करे। जहाँ आप भक्ति का आनन्द लें, वहीं निराकार–परमात्मा को भी उठते–बैठते हमेशा दिलो–दिमाग में बसाये रखें ताकि इसके ऊपर पूर्ण विश्वास कायम

रखकर संसार तक इस सच्चाई का संदेश देते जायें। इस अन्धकार को मिटाते जायें, उजाले को स्थित करते जायें। घृणा–वैर, नफरत की बदबू को दूर करके वहाँ सुगन्धि स्थापित करके यहाँ संसार को यह आवाज दी जा रही है कि ऐसे सन्तों–महापुरुषों का संग करके तुम भी ऐसी महक प्राप्त कर लोगे। जैसे कहते हैं कि चन्दन के पास भी जो वनस्पति होती है, उसमें भी सुगन्धि आ जाती है। इसी प्रकार सन्तों–महापुरुषों के गुणों की सुगन्धि चारों तरफ प्रभाव डालती है।

जब इन्सान भी सन्तों–महापुरुषों का संग कर लेते हैं तो वे भी यह अमोलक दात प्राप्त कर लेते हैं। इसी के साथ जुड़कर जीवन जी लेते हैं। फिर उनके जीवन से भी यह महक आती है। यही महक सारे वातावरण को शुद्ध करती है और सब सुख की सांस, चैन की सांस लेते हैं। दातार ने यह कृपा की है। यही प्यार, यही नम्रता, यही मिठास आप सन्त, साल क्या पूरी उम्र तक हर स्थान पर फैलाते जायें और इसी भावना से युक्त होकर जीवन का हर प्रकार से सुख लेते जायें।

साध संगत जी, धन निरंकार।

- भक्त निष्काम भाव से भक्ति करते हैं।
- संत संसार में रहते हुये निर्लेप जीवन जीते हैं।
- संगत के साथ जुड़ने से मन को बल प्राप्त होता है।